अध्याय– 2

नाट्यशास्त्र का परिचयात्मक अध्ययन

नाट्यशास्त्र की रचना भरतमुनि द्वारा की गई है । वह विश्व की सबसे प्राचीन सभ्यता है । नाट्यशास्त्र को सैतींस अध्यायों में लिखा गया है । इन सैतींस अध्यायों में कुल श्लोक छः हजार है । नाट्यशास्त्र को कला और साहित्य का विश्वकोश माना गया है । ऐसा माना जाता है कि ''नाट्यशास्त्र'' की रचना भरतमुनि नाम के एक व्यक्ति द्वारा की गई है । परंतु भरतमुनि एक व्यक्ति न होकर एक भरतों का समुदाय था, जिन्होंने नाट्यशास्त्र को न जाने कितने समय तक लिखा था । ऐसा कहा गया है कि भरत शब्द एक व्यक्ति न होकर एक जाति वाचक शब्द है । नाट्यशास्त्र की परंपरा ईसा के जन्म से कई हजारों साल पूर्व भारत में विकसित और लोकप्रिय थी । जितने भी भरतो ने नाट्यशास्त्र को लिखा है वह सभी नाट्य–विद्या, गायन, वादन, नर्तन तथा अभिनय में विद्ववान थे । इन्हें पीढी दर पीढी गुरू–शिष्य परंपरा के अनुसार रंगकर्म की सभी विद्याओं का प्रशिक्षण दिया जाता रहा होगा । श्रृत और कण्ठस्थ परम्परा द्वारा यह प्रशिक्षण दिया जाता था । प्रयोग पक्ष से गायन, वादन, नर्तन तथा अभिनय का सम्बन्ध जुड़ा होता था और श्रुतज्ञान के साथ–साथ प्रशिक्षण लेने के साथ व्यवहारिक शिक्षा भी लेनी पड़ती थी । इस विद्या का मूल्य सम्बन्ध प्रयोग ही था । इसी तरह से देखा जाए तो उस समय में शास्त्रगत नियमों और निर्देशों को कण्ठ करने के बाद इसका मुख्य हेतु प्रयोगशीलता से सम्बन्ध रखता था ।

उस समय शास्त्रों के नियमों को वह अपने जीवन में इस तरह याद कर लेते थे कि उनको न ग्रन्थ रचना की अपेक्षा थी और न संग्रह की क्योंकि एक बार शास्त्र के नियमों को याद करने के बाद शास्त्र का काम उनके लिए खत्म हो जाता था । उसके बाद के जीवन में सीखी हुई विद्या से ही काम चलता था । उनका ग्रन्थ उनके कण्ठ में ही रहता था ।

भरतमुनि का नाट्यशास्त्र ग्रन्थ सर्वप्राचीन ग्रन्थ है । जिसमें कला का उत्कृष्ट रूप काव्य और उत्कृष्टतम रूप नाटक है जिसका प्रतिपादक ग्रन्थ नाट्यशास्त्र माना जाता है । भारतीय नाट्यकला पर जब भी विचार किया जाता है तब नाट्यशास्त्र एकमात्र ग्रन्थ हे जिसमें नाट्य कला के अलावा उसके विषयों जैसे की संगीत काव्य, नृत्य, शिल्प और ललित कलाओं के बारे में दिया गया है । सदीयों से नाट्यशास्त्र ग्रंथ ने भारत की रंगमंचीय कला को प्रभावित किया है । इसका कारण यह है कि इस ग्रंथ में नाट्य विषयक विवरण जितनी गहराई से दिया गया है उतना किसी भी अन्य उत्तरकालीन भारतीय ग्रन्थ में नहीं है और तत्कालीन समय में भी किसी अन्य ग्रन्थ में भी प्राप्त नहीं है । भारतीय नाट्यकला की कल्पना नाट्यशास्त्र को छोड़कर करना असंभव है क्योंकि प्राचीन भारत में नाट्यकला के स्वरूप, तत्त्व और प्रकृति को पूर्णतः याद करने के लिए नाट्यशास्त्र ही एकमात्र सहारा था । नाट्यशास्त्र में नाट्य और रंग से सम्बन्धित काव्य शिल्प, संगीत–नृत्य आदि ललित कलाओं का बडी ही विस्तृतता से विवरण दिया है । इसके अलावा इसमें विविध प्रकार के शास्त्र, शिल्प, कला तथ प्रयोगों की चर्चा की हुई है । इसी विशेषता के कारण नाट्यशास्त्र के काव्य, नाट्य, शिल्प तथा ललित विद्याओं का विश्वकोष माना है । भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र को इतना व्यापक सूक्ष्म तथा तात्त्विक स्वरूप दिया है की अन्य आचार्यो को इसके प्रभाव और छाया के अन्दर ही अपना विश्लेषण करना पड़ा ।

नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने जो नाट्य सिद्धांतों की मौलिकता और व्यापक स्वरूप के बीज इस तरह से दिए हैं कि आज भी वह शाश्वत स्थिति में दिए जा सकते हैं । आज भी भरत के नाट्यशास्त्र में नाट्य तत्वों जैसे की चतुर्विध अभिनय, सिद्धांत, गीत तथा वाद्य की विधि, पात्रों की विविध प्रकृति और भूमिका वगैरे का विवेचन विश्व के किसी भी उच्च नाट्यकला के ग्रन्थ से छोटा नहीं है । नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने मानव के शाश्वत जीवन की कल्पना का स्वरूप काव्य, नाट्य, संगीत तथा नृत्य जैसी सुकुमार ललित कलाओं के द्वारा बताया है ।

2.1 नाट्यशास्त्र का स्वरूप :

ललित कलाओं के विश्वकोष, नाट्यशास्त्र ग्रन्थ ने भारत की कला की चेतना को अनुप्राणित किया है । शास्त्रकारो ने भरताचार्य को मुनि और नाट्यशास्त्र को नाट्य–वेद के रूप में आदर दिया है । नाट्यशास्त्र के कुल 36 अध्याय है और कुछ जगह 37 अध्याय भी दिये गए हैं । नाट्यशास्त्र में कुल 3000 श्लोक है । इस का उल्लेख आचार्य अभिनववगुप्त ने अपने नाट्यशास्त्र की व्याख्या देते हुए अभिनवभारती में किया है । उत्तरवर्ती अनेक शास्त्रकारों तथा शारदातनय ने नाट्यशास्त्र के दो संस्करण का उल्लेख किया है । इससे मालूम चलता है कि नाट्यवेद के बृहत् तथा लघ ु दो पाठ थे जिनमें छः तथा बारह हजार श्लोक या ग्रन्थ संख्या की गिनती की जाती है । यह इसीका प्रमाण था । म.म. रामकृष्ण कवि के मतानुसार द्वादश साहस्त्री संहिता वृद्धभरत की रचना थी जिसे संक्षेप करते हुए भरतमुनि ने छः सहस्त्र श्लोको में नाट्यशास्त्र की रचना की । प्राचीन ग्रन्थ को नाट्यवेद नाम दिया तथा दीघ र्् या द्वादशसाहस्त्री के पाठ को ही प्राचीन पाठ माना जिसके कुछ अंश प्राप्त किए गए हैं ।

अन्य विद्वान जैसे की श्री रामकृष्ण कवि इन तर्को से सहमत नहीं है । क्योंकि उनके मत से लघु या षट्साहस्त्रीसंहिता का पाठ ही सबसे प्राचीन है जिनमें अन्य प्रक्षेपों तथा विषय–विस्तारों को जोड़कर विस्तृत बनाना ही उत्तरवर्ती पाठ की स्थिति तथा आयाम को तर्क के सहारे योग्य बनाता है । धनंजय भोज और आचार्य अभिनवगुप्त के समय में दोनों पाठों की परम्पराए चल रही थी । धनंजय ने नाट्यशास्त्र के षट्साहस्त्री रूप को तथा भोजराज ने द्वादशसाहस्त्री अथवा बृहत् पाठ को अपनी रचना का आधार माना है । आचार्य अभिनव गुप्त ने नाट्यशास्त्र के षट्साहस्त्री पाठ पर ही अपनी सुप्रसिद्ध अभिनव भारती की टीका लिखी है । शारदातनय ने इन दोनों पाठों का कारण भी अपने भाव प्रकाशन में दिया है । उसके उपरांत मूल नाटयवेद को दो भागों में विभाजित किया था जिसका आग्रह मनु द्वारा किया गया था । जिनमें से एक षट्साहस्त्री और दूसरा द्वादशसाहस्त्री था । सदाशिव भरत की परंपरा में द्वादशसाहस्त्री का पाठ प्रचलित था ।

2.2 नाट्यशास्त्र का विषय संक्षेप :

नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में अत्रेय और आदि ऋषियों द्वारा भरतमुनि को नाट्यवेद के विषयों के बारे में प्रश्न पूछे गये जिसमें नाट्यवेद की उत्पत्ति कैसे हुई , किसके लिए हुई , इसके अंग कौन–कौन से हैं , उसकी प्राप्ति के उपाय कौन–से है , तथा उसका प्रयोग कैसे हो सकता है , इसका उत्तर देते हुए भरतमुनि ने कहा – ''नाट्यवेद की रचना करने के लिए ऋग्वेद से पाठ्य और अथर्ववेद से रसों सामवेद से संगीत और यजुर्वेद से अभिनय को लेकर पंचम वेद जो नाट्यवेद कहलाया उसकी रचना की है । इसे इस स्वरूप में निर्मित कर मुनि ने इसे अपने पुत्रों को इसका ज्ञान दिया ।

द्वितीय अध्याय में भरतमुनि ने प्रेक्षागृह का वर्णन किया क्योंकि नाट्य प्रदर्शन के लिए प्रेक्षागृह आवश्यक है । भरतमुनि ने प्रेक्षागृह के तीन प्रकारों के बारे में बताया है । त्र्यंस्त्र जो सबसे छोटा होता है । चतुरस्त्र जो मध्यम आकार का होता है । और विकृष्ट (ज्येष्ठा) जो सबसे बड़े आकार का होता है । इसके साथ इस अध्याय में प्रेक्षागृह के प्रमाण तथा लक्षण भी बताए गए हैं । मनुष्यों के लिए बनाए गए प्रेक्षागृह का स्वरूप की चर्चा तथा विस्तीर्ण प्रेक्षागृह की अनुपयोगिता का उल्लेख मिलता है । प्रेक्षागृह के निर्माण के लिए शुभ नक्षत्र की चर्चा की है । इसमें नाट्यगृह की भूमि योजना, आधारशिला स्थापना के समय उत्सव का भी विधान है । मत्तवारणी, रूङ्गपीठ रंगशीर्ष, नाट्यमण्डप इन सभी के बारे में बतलाया है तथा उनके शिल्प, आकार तथा साधनों का विस्तार में विवरण दिया गया है ।

तृतीय अध्याय में नाटयमण्डप में की जाने वाली जरूरी धार्मिक क्रियाओं को करते हुए अलग–अलग देवताओं की पूजा अर्चना तथा उनसे प्राप्त होने वाले कला का निरूपण किया गया है । इस अध्याय में रंगमंच की प्राण–प्रतिष्ठा जर्जरपूजन विधान, देवगण की स्थापना और उनकी स्थापनार्थ मण्डल निर्माण विधि तथा देवगण की पूजन विधि बताई गयी है तथा सभी देवताओं के पूजन मंत्र दिए गए हैं । इसके अलावा जर्जर पूजन, होम विधि घटभेदन, रंग प्रदीपन के बारे में कहा गया है ।

चतुर्थ अध्याय में भरतमुनिने अपने द्वारा अमृत मन्थन नामक नाट्य प्रयोग को देवताओं समक्ष प्रस्तुत किया था । इसके अलावा त्रिपुराद्राह नामक नाट्य प्रयोग महेश्वर को सम्मुख प्रस्तुत करने के बारे में बताया गया है । महेश्वर के आदेश से तण्डु द्वारा

भरतमुनि को अंगहार, करण तथा रचकों का ज्ञान दिया गया । ताण्डव नृत्य की उत्पत्ति के बारे में इसी अध्याय में विस्तार से बताया गया है तथा शिल्प का संगोपांग विवेचन है जिनसे अभिनय में नृतहस्तों और गीतों से सौंदर्य वृद्धि होती है ।

पंचमाध्याय में भरतमुनि ने नाट्यप्रयोग के आरंभ में प्रस्तुत किए जाने वाले पूर्व रंगविधान में पूर्वरंग लक्षण, पूर्वरंग के विभाग, प्रत्याहार को बताया है । इसके उपरांत नान्दी प्रस्तावना तथा ध्रुवाओं का उल्लेख मिलता है ।

षष्ठ अध्याय में भरतमुनि ने रस के बारे में बताया है । इस अध्याय का रसाध्याय के नाम से भी जाना जाता है । इस अध्याय में ऋषिमुनि गण रस के विषय में भरत मुनि को पांच प्रश्न पूछते हैं । रसो का रसत्व किस प्रकार उत्पन्न होता है , यानि रस क्या है ,भाव क्या है , और क्या करते हैं , संग्रह किसे कहते हैं , कारिका का लक्षण क्या है , और निरूक्त का क्या स्वरूप है , इसका उत्तर भरतमुनि इस अध्याय में देते हैं । जिसमें आठ रस श्रृंगार , हास्य ,करूण , रौद्र , वीर , भयानक , वीभत्स तथा , अद्भूत रसों के बारे में विस्तार से बताया है । स्थायी भाव, रति, ह्रास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा और विस्मय के बारे में कहा है । संचारी भाव सात्त्विक भाव जो आठ है । चार अभिनय के बारे में, धर्मी, चार वृत्ति, प्रवृत्तियाँ, सिद्धियाँ, स्वर, आतोद्य प्रकार, ध्रुवागान के पांच प्रकार, रस निरूपण आदि के बारे में विस्तृत जानकारी दी गयी है ।

सप्तमाध्याय में भावों के बारे में कहा गया है जिसे भावाध्याय भी कहते हैं । इस अध्याय में भाव, विभाव, स्थायी भाव, संचारी भाव के रसों को ध्यान में रखकर विवरण दिया है ।

अष्टमाध्याय में अभिनय का वर्णन किया गया है । इस अध्याय में अभिनय के चारों प्रकारो का वर्णन किया गया है । आंगिक वाचिक, सात्विक और आहार्य अभिनय के भेद भी बताये गए हैं और आंगिक अभिनय के बारे में विस्तृत जानकारी जैसे की उपांगाभिनय का वर्णन दिया गया है ।

नवमें अध्याय में आंगिक अभिनय के बारे में बड़ी गहनता से समझाया गया है । इस अध्याय में हस्त, कटी, कुक्षी, पाद तथा जानु आदि अंगो के अभिनय में 24 असंयुक्त हस्त, 13 संयुक्त हस्त, 27 नृत्त हस्त बताये गये हैं ;इन्हीं प्रकारों का वर्णन किया गया है

। इसके अलावा रस भाव तथा अभिनय के अनुरूप अंग संचालन तथा हस्तमुद्राओं का प्रयोग बताया गया है । इस अध्याय में नृत्य में हस्तमुद्राओं का महत्व खूब होता है । इसके बारे में कहा गया है ।

दशम अध्याय में आंगिक अभिनय की बात को आगे बढाते हुए इसमें वक्ष, कटि तथा शरीर के बाकी अवयवों का परिचालनजन्य पांच प्रकारों का वर्णन देकर विभिन्न अवसरों पर उनके अभिनय प्रयोग कैसे होता हे उनके बारे में बताया गया है ।

एकादशाध्याय में 16 प्रकारों की भौमी चारी, 16 प्रकार की आकाशिकी चारियों के बारे में बताते हुए उनके लक्षण और प्रयोगों को बतलाया गया है और खण्ड तथा करणों और मण्डलों की उपयोगिता नाट्य में किस प्रकार होती है इसका वर्णन इस अध्याय में दिया गया है ।

द्वादशाध्याय में मण्डलों के लक्षण के बारे में बताया है और मण्डलों की संख्या तथा प्रयोग का वर्णन किया गया है ।

त्रयोदशाध्याय में गति के बारे में बताते हुए रस आदि के समय तथा अवस्था के अनुरूप पात्रों की गति का विवरण दिया गया है । इसके अलावा इसमें नाट्यप्रयोग की प्रस्तुति के आरंभ में ध्रुवाओं के गान के आरंभ में होने वाले पात्रों के प्रवेश के समय जो पात्रों की गतियां है उसके बारे में बताया गया है । इसके बाद देव, राजा, मध्यम वर्ग के स्त्री–पुरूष तथा निम्न कक्षा के लोगों की गति के बारे में जानकारी दी गई है । इस गति में लगने वाले समय तथा रौद्र, वीभत्स, वीर आदि रसों की प्रस्तुति करते समय की जाने वाली भावभंगीमाओं का वर्णन किया गया है । इसके अलावा शीतार्त, सन्यासी, अलग–अलग पात्रों जैसे की मद्मद् तथा उन्मत्त पात्रों के परिचालन प्रकार और गतियों के अभिनय के बारे में बताया है ।

चतुर्दशाध्याय में रंगमंच पर बनाने वाले सेंट जैसे की गृह, उपवन, जल, स्थल, वन वगैरे जगहों को सांकेतिक करने के उचित समय के अंग के अनुसार विभाजन बताया गया है । इसके अलावा घटनाओं के आधार पर अंकों की योजनाएँ जैसे की एक वर्ष या एक मास में घटित घटनाओं के अंक । इसमें चार प्रकार की प्रवृत्तियॉ, जो देश वेशभूषा तथा

आधार आदि पर निर्भर है उसका निरूपण दिया गया है । दो प्रकार के नाट्य प्रयोग सुकुमार और आविद्ध नामके है उसका वर्णन है और लोकधर्मो तथा नाट्यधर्मी नाट्य विधाओं का भी उल्लेख है ।

पंचदशाध्याय में वाचिक अभिनय की जानकारी दी गई है । जिसमें आरंभ के अक्षरों के ऊपर आधार रखने वाली वाणी का उपयोग नाट्य के वाचिक अभिनय में बताते हुए और अक्षरों में जो स्वर और व्यंजन होते हैं उसके विभेद बताते हुए उनके स्थान और प्रयत्न का विवेचन है । संज्ञा, क्रिया, उपसर्ग और संधियाँ जो शब्दों के विभेद है वह बतलाते हुए नाटक में उपयोग करने वाली भाषाओं का विवेचन शब्दभेद के द्वारा बताया है । इसमें नाट्य में जो वाचिक अभिनय किया जाता है उसमें उपयोग किए जाने वाले अक्षर जिसकी संख्या एक से लेकर छब्बीस (26) है उसके छंदों का उदाहरण दिया गया है । आखिर में मात्रा गुरू, लघु तथा यति के छन्दःशास्त्र के जो पारिभाषिक शब्द है उसकी जानकारी दी गई है ।

षोड्षाध्याय में इसी विषय को आगे बढ़ाया गया है । वाचिक अभिनय में उपयोग में आने वाले वृत्तें के उदाहरण दिए गए हैं । इसके अलावा सम, विषम के वृत्त तथा आर्य प्रभेदों के बारे में कहा है ।

सत्रहवें अध्याय में काव्य के छत्तीस लक्षणों को अभिनय के द्वारा बताया गया है । काव्यों के अलंकार जैसे की उपमा, रूपक, दीपक तथा यम का नाम है उनके अलंकार के बारे में तथा गुण और दोषों का वर्णन किया गया है ।

अठारवें अध्याय में नाटक में उपयोगी भाषाओं के बारे में कहा गया है । इस भाषाओं को समझाते हुए संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रष्ट या देशी शब्द के रूपों के उच्चारण के अलग–अलग भेद बताकर उसके द्वारा होने वाले परिवर्तनों का उल्लेख है । इसीके द्वारा भाषा तथा विभाषाओं का वर्णन मिलता है । इन भाषाओं को किस तरह से बोला जाए इसके नियम, विराम और काकु का प्रयोग इसमें बताया है । प्राकृत जैसी कई भाषाओं के ओकारबहुला के भेद बताएं गये हैं ।

उन्नीसवें अध्याय में पात्र को वर्गो के हिसाब से जैसे की उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग के किस तरह से सम्बोधन करते हैं उसकी विविध रीतो का वर्णन दिया है । आगे बढ़ते हुए इस अध्याय में वर्गो के जो पात्र होते हैं उनके नामकरण के उपाय बताएं हैं । गद्य–पाठय के गुण, स्वर, व्यंजन आदि के उच्चारण स्थान बताते हुए इसमें स्वरों के अलग–अलग प्रकार जैसे की उदात आदि के बारे में कहा गया है । इसके आगे काकु के विभेद और स्वरों के अलंकार जैसे की उच्च, मन्द, दीप्त, भद्र तथा नीच द्रुत तथा विलम्बित अलंकारों के बारे में कहा गया है ।

बीसवें अध्याय में नाट्यशास्त्र के मुख्य विषय रूपकों के विभेद की शुरूआत की गई है । इस अध्याय में दशरूपकों के लक्षण तथा उसकी विशिष्टता को बताया गया है । इस अध्याय में रूपकों के संघटक अंगो की चर्चा हुई है ।

इक्कीसवें अध्याय में कथा को वस्तु के भेद जैसे की आधिकारिक तथा प्रासंगिक भेद को बताते हुए इसमें पांच संधियां, पांच अवस्था, पांच अर्थप्रकृतियां और सन्ध्यन्तर के बारे में कहा है । आगे सन्धियों के बारे में बताते हुए उसके अंगो के लक्षणों की चर्चा की गई है । अर्थ के उपक्षेपको द्वारा कथा की वस्तु के सूच्य रूप बताया है । इसमें उनके पांच प्रकार के लक्षण के साथ बताया गया है और सभी विद्या, शिल्प और कलाए नाट्य उपयोगी है यह बताया गया है ।

बाईसवें अध्याय में वृत्तियों के बारे में बताया है जो नाट्य के उपयोग में आती है । भारती, सात्वती, कौशिकी और आरम्भरी यह चार वृत्तियां हे जिनकी उत्पत्ति के बारे बताते हुए एक प्रसंग का वर्णन किया है जहाँ विष्णु भगवान ने मधुकैटभ नाम के दैत्यों से युद्ध करने का और चारों वृत्तियों के प्रयोग की पौराणिक कथा का वर्णन है । इसके अलावा इस अध्याय में चार वेदों में से चारों वृत्तियों की उत्पत्ति तथा उसके भेद–प्रभेद और लक्षणों की चर्चा की है इसके बाद वृत्तियों का रसो में योजना का उल्लेख मिलता है ।

तेईसवें अध्याय में आहार्य अभिनय की चर्चा की गई है । जिसमें नेपथ्य तथा वेशभूषा पर आहार्य अभिनय अवलम्बित है । जिसके कारण इस अध्याय में आभूषण के स्वरूप की चर्चा तथा वेशभूषा के प्रदर्शन हेतु विविध उपायों के बारे में बताया है । इसमें नेपथ्य के

चार प्रकार, अलंकारों का विवरण तथा अलग–अलग देश के निवासी जिनके द्वारा पहनने वाले अलग–अलग अलंकारों के बारे में कहा गया है । इसके बाद इसमें अलग–अलग देशों में किस तरह के उपकरणों के बारे में तथा सजावट जैसे तिलक, अंजन, दन्त और ओष्टराग (होंठ) आदि की साजसज्जा का वर्णन है । इस अध्याय में सजीव नेपथ्य का वर्णन करते हुए नाट्य प्रयोग में आने वाले पशु, पक्षी, सर्प आदि को किस तरह से और किस विधि के साथ प्रस्तुत करें उसका उल्लेख है । इसके अलावा अंगरचना के अंतर्गत जो श्रेष्ठि, शक, यवन, शूद्र, वैष्य आदि को बताने के लिए उन पात्रों के शरीर के अनुसार रंग में रंगने का वर्णन है तथा उसके अनुरूप मूंछ, दाढ़ी आदि किस तरह होती है उसका भी वर्णन दिया है ।

चौबीसवें अध्याय में सामान्य अभिनय का वर्णन किया है । इसके अंतर्गत पात्रों की तीन प्रकार की प्रकृति उत्तम, मध्यम और अधम का वर्णन दिया गया है । इसमें स्त्रियों के अयत्नज अलंकार में आने वाले भाव, हाव और हेला का स्वरूप बताया गया है । इसके साथ इनके स्वभावज अलंकारों की चर्चा की है । वाचिक अभिनय के आलाप, प्रलाप आदि विभेदों के वाक्याभिनय के निरूपण को बताया गया है । इस अध्याय में उचित और अनुचित घटनाओं का मंच पर किस प्रकार प्रदर्शन करते हैं, उसका वर्णन करते हुए दर्शन, स्पर्शन आदि क्रियाओं का अभिनय किस प्रकार करते हैं उसकी विधि बताई गयी है । आगे अभिलाषा, स्मृति जैसे दश दशाओं का वर्णन बताते हुए स्त्री जातियों के स्वभाव को ध्यान में रखते हुए उसके आश्रय के विभेद बताए है । आगे कामावस्था में दूतीप्रेषण तथा नायिकाओं के अवस्था अनुसार आठ प्रकारों को बताया गया है और विविध दशाओं में जैसे की प्रणय, क्रोध और ईर्ष्या में किए जाने वाले सम्बोधन का यहाँ विवरण दिया गया है ।

पच्चीसवें अध्याय में वैशिकपुरूष के लक्षण तथा उसके सहजगुण और सम्पादित गुणों को विस्तार से कहा गया है । इस अध्याय में वैशिकपुरूष के मित्र तथा दूत कैसे होने चाहिए उसका भी वर्णन है । आगे स्त्री की यौवन को चार अवस्थाओं में बताकर प्रेमियों के प्रकारों का वर्णन और स्त्री को वश में करने के उपायों को विधिवत् वर्णन किया गया है ।

छब्बीसवें अध्याय को चित्राभिनयाध्याय से जाना जाता है । इस अध्याय में जो अभिनय अंगो द्वारा किया जाता है और जिसके बारे में प्रस्तुत करना रह गया है । वैसे अभिनय को सामान्य अभिनय के अंदर इस अध्याय में बताया गया है । जिसमें दिन, रात, संध्या, अंधकार आदि प्रदर्शित करने की विधि का वर्णन है । इसके बाद भूमिगत पदार्थ, चन्द्रिका, सुख, आदि, सूर्य, अग्नि, दोपहर का सूर्य, सुखप्रद पदार्थ, तीक्ष्ण स्वरूप वाले पदार्थ आदि की चर्चा । गम्भीर तथा उदात भाव, हार तथा माला आदि कैसे हस्त द्वार बताते हैं वह है । कथावस्तुओं के प्रकाशिकों की यहाँ प्रकट किया गया है । इसके अलावा बालक किस तरह से बोलता है, आदि को बताया गया है ।

सत्ताईंसवे अध्याय में नाट्य की सिद्धि के निरूपण की चर्चा की गई है । इसमें नाटय सिद्धि के प्रकार मानुषी सिद्धि, वाड्मयी सिद्धि, शरीरी सिद्धि, देवी सिद्धि, त्रिविध घात दैवकृत घात, शत्रुकृतघात आदि के बारे में वर्णन किया है । इसके अलावा प्रेक्षकों की अलग–अलग श्रेणियाँ दर्शको की पसंद का वर्णन है । इस अध्याय में नाटक प्रस्तुति के जो निर्णायक या परीक्षक होते हैं उनके अलग–अलग श्रेणियाँ और योग्यताओं के बारे में जानकारी है ।

अट्ठाइसवें अध्याय से लेकर तैतीसवें अध्याय तक संगीतशास्त्र के बारे में कहा गया है, जिसमें वाद्यों के प्रकार, स्वर के बारे में कहा गया है जिसमें वाद्यों के प्रकार, स्वर के सात प्रकार, वर्ण, अलंकार के बारे में कहा गया है । वीणाओं के स्वरूप, बांसुरी के स्वरूप आदि, ताल और लय का वर्णन, अवनद्धवाद्यों को बताया है ।

आगे ध्रुवाध्याय है जिसमें पात्रों की अलग–अलग अवस्थाओं में गाये जाने वाली ध्रुवाओं का वर्णन है । आगे वाद्याध्याय मृदंग आदि अवनद्धवाद्यों का विवरण दिया गया है ।

चौतींसवे अध्याय को नायक–नायिका भेद का उल्लेख है । जिसमें स्त्री और पुरूष की प्रकृति की चर्चा है जिसमें उनकी त्रिविध प्रकृति दर्शाते हुए चार प्रकार के नायकों का वर्णन है । नायक परिवार के अंतर्गत नायिका जैसे की महादेवी, देवी, नर्तकी परिचारिका आदि पात्र के स्वरूप की चर्चा है । इसके उपरांत नृप, सेनापति, पुरोहित, मंत्रीगण, सचिव, कुमार और प्राद्विवाक के लक्षण भी बताये गए हैं ।

पैंतीसवें अध्याय को भूमिका, पात्र विकल्प अध्याय कहा गया है जिसमें नाट्यमंडली के सदस्यों की विशेषताएँ दर्शायी गयी है । इस अध्याय में दो नाट्य प्रयोग जिनके नाम सुकुमार तथा आविद्व है उनके बारे में बताकर अलग–अलग पात्र जैसे की सूत्रधार, पारिपार्श्विक, अभिनेता विदूषक, नायिका, गणिका आदि पात्रों के स्वरूप की चर्चा की गयी है ।

छतीसवां अध्याय अंतिम अध्याय माना जाता है । जिसमें भरतमुनि को मुनिओं द्वारा फिर से प्रश्न पूछे गए हैं, जिसमें पूछा गया कि पृथ्वी पर नाट्य का अवतरण कैसे हुआ ? इसके जवाब में भरतमुनि ने दो आख्यान कहे । प्रथम में भरतपुत्रों द्वारा मुनिजनों का अपमान करने की कथा तथा दूसरे में राजा नहुष की प्रार्थना पर स्वर्ग में होने वाले नाटकों को पृथ्वी पर लाने की कथा है ।

2.3 नाट्यशास्त्र के रचयिता :

नाट्यशास्त्र के रचयिता भरतमुनि है । भरतमुनि को एक पौराणिक व्यक्ति के रूप में माना गया है जो देवलोक से भूलोक तक प्रसिद्ध है । कई सारे पुराणों और महाकाव्यों में भरत नाम का उल्लेख है जैसे कि – रामायण में दशरथ के पुत्र भरत, महाभारत में दुष्यन्त के पुत्र भरत तथा मान्धाता के प्रयौत्र और जड़ भरत जिनका उल्लेख श्रीमद् भगवत् पुराण में मिलता है । यह सभी भरत राजवंशी है और कई भरतो की कथा अलग है जो नाट्यशास्त्र के रचयिता भरत से संबंधित नहीं है । भरतमुनि कोई काल्पनिक व्यक्ति नहीं है क्योंकि भरतमुनि का उल्लेख पुराणों में मिलता है इसी कारण भरतमुनि एक ऐतिहासिक व्यक्ति है । नाट्यशास्त्र में जो कथा दी गई है उसके अनुसार भरतमुनि को ब्रह्मा ने नाट्यवेद दिया और भरतमुनि ने अपने सौ पुत्रो को नाट्यवेद की शिक्षा दी जिसके कारण अनेक भरतों ने नाट्यशास्त्र के विषय का2 लेकर कई ग्रंथ लिखे थे । भरतमुनि ने भी कई प्रकार के रूपकों के प्रयोग को अलग–अलग अवसरों में प्रस्तुत किया जिसमें ''महेन्द्र–विजय'' नाटक प्रकार है । त्रिपुरदाह डिम प्रकार है तथा अमृतमन्थन समवकार प्रकार है । भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में जो प्रेक्षागृह की रचना का उल्लेख किया है इसके कारण भरत को नाटयमण्डप के आद्य–प्रवर्तक माना गया है ।

भरतमुनि का उल्लेख नाट्यशास्त्र के साथ–साथ कई सारें नाट्यशास्त्रीय रचनाएँ तथा नाटक आदि के रचयिता द्वारा किया गया है । जिसमें भरतमुनि को नाट्यशास्त्र के निर्माता माना गया है । नाट्यशास्त्र को आधार मानकर कई विद्वानों ने अपने ग्रंथों की रचना की है जिसमें धनंजय जिसने दशरूपक के बारे में लिखा, नंनिकेश्वर ने अभिनयदर्पण, शारदातनय ने भाव प्रकाशन, अभिनवगुप्त में नाट्यशास्त्र की टीका करते हुए अभिनवभारती टीका लिखी, सिंहभूयाल ने रसार्णवसुधाकर और सागरनन्दी ने नाटक लक्षण रत्नकोश की रचना की । इन सभी विद्वानों ने भरतमुनि को बड़ी श्रद्धा से नाट्यशास्त्र के आचार्य के रूप में वर्णित किया है । महर्षि पाणिनि की तरह भरतमुनि भी अपनी नाट्यविद्या के सूत्रकार के रूप में प्रसिद्ध है । नाट्यशास्त्र में शास्त्रीय तत्वों को लिया गया है और वह सूत्ररूप में हैं जिसके कारण भरतमुनि के नाट्यशास्त्र को भरतसूत्र के नाम से भी जाना जाता है । नाट्यशास्त्र में अभिनेता, सूत्रधार आदि के लिए भरत शब्द का उपयोग किया गया है जिसके कारण कई सारे भरतों का होना संभव है । इन कई सारे भरतों को वृद्धभरत या आदि भरत का उनके नाम के आगे विशेषण दिया गया ।

आचार्य अभिनवगुप्त ने भी इस बात पर सम्मति बताई है कि नाट्यशास्त्र को प्रथम सदाशिव द्वारा फिर ब्रह्मा तथा आखिर में भरतमुनि द्वारा प्रणयन किया गया । इससे यह मालूम होता है कि नाट्यशास्त्र के प्रणेता प्रथम आचार्य सदाशिव बाद में ब्रह्मा तथा अंत में भरत थे । शारदातनय के भाव प्रकाशन में कहा गया कि नाट्यशास्त्र की द्वादशसाहस्त्री संहिता की रचना जिन्होंने की है वह आदिभरत या वृद्ध भरत है क्योंकि द्वादशसाहस्त्री संहिता में उसके गद्यांश दिए गए हैं । इन सबसे यह निष्कर्ष मिलता है कि आदि भरत या वृद्ध भरत ने जो रचनाएँ की वह भरत के उत्तरकाल में प्रचलित थी और उस समय भरत शब्द का विशेषण लगाकर नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों को लिखा गया । इस प्रकार भरत शब्द को कोई वंश या जाति परम्परा माना गया है परंतु भरतमुनि के व्यक्तित्व में क्षति नहीं हुई । इस बात से यह मालूम चलता है कि नाट्यशास्त्र अनुशीलन के कारण नाट्याचार्यो और भरतों की एक परम्परा थी जिन्हें भरत की संज्ञा दी गई थी । नाट्यशास्त्र के कई सारे विवरणों में भरतमुनि के पृथ्वी पर होने की और उनके निवास कहा पर था वह प्राप्त होता है । नाट्यशास्त्र के अनुसार

भरतमुनि ने शिव के गण तण्डु द्वारा शिव के कहने पर तांडव नृत्य हिमालय पर्वत पर सीखा तथा शिव के समक्ष भरतमुनि ने त्रिपुरदाह नाम के डिम (रूपक) की प्रस्तुति की थी । नाट्यशास्त्र में हिमालय पर्वत का सुंदर वर्णन है और साथ ही साथ शिव का तांडव नृत्य और पार्वती के लास्य नृत्य का वर्णन है इससे मालूम होता है कि भरतमुनि का निवासस्थन भी हिमालय में कही है । कुछ महानुभावों के मत से भरतमुनि हिमालय के निकट कश्मीर में रहते थे । ऐसा मानते थे और कश्मीर में ही सबसे ज्यादा नाट्यशास्त्र का परम्परागत अध्ययन होता था और इसी कारण कश्मीर के विद्वानों ने नाट्यशास्त्र की व्याख्याएँ लिखी जैसे की भट्टलोल्लट, श्रीशंकुक, अभिनव गुप्त तथा भट्टनायक । भरतमुनि नाटय विद्या के साथ–साथ अलंकारशास्त्र के भी प्रथम आचार्य है क्योंकि उन्होंने नाट्यशास्त्र में नाट्य सहायक तत्वों में अलंकार, छन्दःशास्त्र तथा संगीत का विस्तृत विवरण दिया है ।

2.4 नाटयशास्त्र में आंगिक अभिनय में अंग और उपांग

भरतमुनि रचित नाट्यशास्त्र में मानव शरीर की रचना को बताकर उसके विभाग बनाए हैं । लेकिन भरतमुनि ने शरीर के विभागों को नाट्य रचना में उपयोगी अभिनय के माध्यम से बताया गया है जो नाट्य प्रयोग भी नाट्य प्रस्तुत करने में सहायक है । मानवीय शरीर को दो प्रकार से जानने का प्रयास किया गया है। भरतमुनि ने सबसे पहले नाट्यकला के सिद्धांत और प्रयोगों का वर्णन नाट्यशास्त्र में किया है जिसके कारण भरतमुनि को शास्त्रप्रणेता और नाट्यप्रयोक्ता कहा गया है । इन नाट्य प्रयोगो में अभिनय को एक महत्वपूर्ण साधन माना गया है जो नाट्य प्रयोग के उपकरणों में से एक है । अभिनय के बिना किसी भी नाट्य प्रयोग विषय के सिद्धांतों का विवेचन करना संभव नहीं है । नाट्य प्रयोग में अभिनय का उपयोग होता है । भरतमुनि ने इसी कारण नाट्य के प्रयोग में अभिनय के विधान को बहुत ही मनोयोग से विवरण दिया है । जब पात्र राम आदि की अवस्था का अभिनय करता है तो पात्र अभिनेता कहलाता है । इस का कारण यह है कि यह नाट्य का प्रयोग अभिनय द्वारा किया गया है । अभिनय के माध्यम से जो भी पात्र अभिनय प्रस्तुत करता है उसे अभिनेता कहा जाता है ।

अभिनय के द्वारा काव्य को नाट्य का स्वरूप देकर रस की तरफ गतिशील बनता है और रस की सिद्धि प्राप्त होती है और रस की निष्पत्ति होती है । इससे यह ज्ञान प्राप्त होता है कि अभिनय नाट्य और रस एक–दूसरे से जुड़े हुए है । नाट्य के अर्थ की रचनात्मकता से दर्शाने को भी अभिनय कहते हैं जिस के द्वारा प्रेक्षक रस की अनुभूति करता है ।

अभिनय को करने के लिए महत्वपूर्ण माध्यम है शरीर । कोई भी अभिनय को करने के लिए मानव शरीर का होना जरूरी है और वहीं माध्यम है । जिस प्रकार रंगो को दिखाने के लिए केनवास की जरूरत होती है उसी प्रकार अभिनय को शरीर की जरूरत होती है । भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में अभिनय के चार प्रकार दिए है । जिसमें प्रथम आंगिक अभिनय, दूसरा वाचिक अभिनय, तीसरा आहार्य अभिनय और चौथा सात्विक अभिनय है । भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में अध्याय 8 (आठ) से आंगिक अभिनय का प्रयोगात्मक वर्णन दिया है । आंगिक अभिनय में शरीर के अंग, उपांग तथा प्रत्यांग की अलग–अलग क्रियाओं तथा मुद्राओं को बताया गया है और उसके द्वारा जो सांकेतिक अर्थ का प्रदर्शन होता है वह आंगिक अभिनय है । आंगिक अभिनय को भरतमुनिने नाट्यशास्त्र में बहुत ही सूक्ष्मता और विस्तृतता से विवरण दिया है । भरतमुनि ने आंगिक अभिनय को तीन हिस्सो में बाँटा है । जिसमें प्रथम शरीर दूसरा मुखज और तीसरा चेष्टाकृत। आंगिक अभिनय के पहले प्रकार में शरीर है जिनको तीन वर्गो में बाँटा गया है । प्रथम अंग जो छः है और दूसरा उपांग दोनों की संख्या छः है । अंग में सिर, हस्त, वक्ष स्थल, पार्श्व, कटि और पाद को कहा गया है । उपांग में नेत्र, भू, नासा, अधर, कपोल और चिबुक को कहा गया है । भरतमुनि ने आंगिक अभिनय में मुखज अभिनय तथा शरीर के मुख्य अंग मस्तिष्क के अभिनय का प्रथम विवरण किया । भवों को अभिव्यक्त करने के लिए मुनिने अंग तथा उपांगो को अभिनय या प्रयोग की अपेक्षा से एक–दूसरे तरीके से संचालित विधान भी दिया है । क्रियाओ के अनुरूप उन सभी मुद्राओं के नामकरण किये गये हैं । अंगभंगिमाओ तथा आंगिक मुद्राओं का विवरण नाटयशास्त्र में बडे ही व्यवस्थित रूप से दिया गया है । नाटयशास्त्र के अनुसार शिर के तेरह भेद बताये गए हैं जो इस प्रकार है – आकम्पित, कम्पित, द्युत, विद्युत, परिवाहित, आधूत, अवधूत, अञ्यित, निहध्यिंत, परावृत्त, उत्क्षिप्त, अधोगत तथा लोलित।

भरतमुनि ने आंगिक अभिनय के अंतर्गत दृष्टि का भी महत्व समझाया है । जिसका महत्व अंग और उपांग के विवरण में महत्वपूर्ण होने के साथ–साथ अर्थ को अभिव्यक्त करना है । भरतमुनि के अनुसार दृष्टि मनुष्य की आंतरिक भाषा तथा उसके भावों को दर्शाती है जिसका मुनिने विस्तृत वर्णन किया है । जिसमें आठ रस–दृष्टियां, आठ स्थायीभाव–दृष्टियां और बीस सच्चारीभाव की दृष्टियों का वर्णन किया है जिससे सभी रसों को अभिनय के माध्यम द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है । भौं, तारा तथा पुट के भेद भी भरतमुनि ने दृष्टिभेद के संबंध में दिखलाये हैं । जिनमें सभी के अलग–अलग प्रभेद बताये हैं, जो रस तथा भावों के अनुरूप है । यह सभी अंगो के प्रभेद खुद की विशिष्टता रखते हैं और जिसका एक सुनिश्चित अर्थ है उसके साथ–साथ यह परंपरा का भी दर्शन करवाते हैं । हर एक भंगिमा मनुष्य के जीवन की दशा को दिखलाती है और इसी कारण अभिनय प्रकार महत्वपूर्ण है ।

मानव के अंगो में नासिका, कपोल, अधर और चिबुक का भी महत्व है, जो अभिनय में उपयोग होता है । नाटयशास्त्र में इन अंगों की भंगिमाओ का भी वर्णन दिया है । जिसके अंतर्गत नासिका के छ कर्म है : नता, मनु, विकृष्टा, उच्छवासा, विकूणिता तथा स्वाभविका । कपोल के छ कर्म है : क्षाम, फुल्ल, पूर्ण, कम्पित, कुंच्चित और सम । अधर के छ कर्म है : विकर्तन, कंपन, विसर्ग, विनिगूहन, सन्द्रष्टक और समुद्रग कर्म। चिबुक के सात कर्म है जिसे दुन्तकर्म भी कहा गया है : फुट्टन, खण्डन, छिन्न, चिकित, लेहन तथा सम । ग्रीवा के नौ कर्म है : समा,नता, उन्नता, व्यस्ता, रेचिता, कुच्चिता, अचिता, वलिता तथा विकृता ।

इसके अलावा आंगिक अभिनय के अंतर्गत भरतमुनि ने नाटयशास्त्र में हस्ताभिनय जिसके अंतर्गत पात्रानुसार कृताभिनय शास्त्रानुमाहित हस्तमुद्रा, कालानुकूलता एवं अनुगमन अनुसार हस्तमुद्रा, मुखराग से अंगाभिनय की अनुगतता करना तथा हस्ताभिनय के विभेद भी बताये हैं जिसके तीन वर्ग है : असंयुक्त हस्त , संयुक्त हस्त तथा नृत हस्त । इसके आगे बताते हुए हस्तांगुलियों और बाहुओं का संचालन प्रकार, अंगो के अभिनय, चारीविधान जिसमें भौमी चारी तथा आकाश की चारी का वर्णन है । तद्उपरांत स्थान का वर्णन भी है । जिसके अंतर्गत आसन स्थान के प्रकार दिये गए हैं । आगे बतलाते हुए सौष्ठव, मण्डलप्रचार जिसमें भौमिकमण्डल तथा आकाशिक मण्डल

का वर्णन । गतिप्रचार, पात्रप्रवेश, रसगति, विविध पात्रो की गति, गति के अनुरूप संगीत तत्व, स्थानक या स्थान के प्रकार जिसमें उवहित्थस्थान तथा अश्वकान्तकस्थान बताया है । आसन और शयन का विधान भी दिया गया है । इसके उपरांत अंगभंग का भी विवरण दिया है । जिसमें अभंग, समभंग, त्रिभंग तथा अतिभंग का वर्णन है और इसमें अभिनय में सौष्ठव का स्थान समझा जा सकता है उसका भी वर्णन दिया गया है । शरीर, मुखज, चेष्टाकृत यही प्रकार शाखा, अंग तथा उपांग बन जाते हैं । आंगिक अभिनय की और तीन वस्तुएँ है, जिन्हें जानना आवश्यक है । जिसे शाखा, नृत तथा अंकुर कहा जाता है । नाट्यशास्त्र के अनुसार आंगिक अभिनय को अभिनय की शाखा कहा गया है । सूच्य या सूचना अभिनय को अंकुर कहा गया है और अंगहारो द्वारा किये गए तथा कारणो से युक्त अभिनय को नृत्त कहा गया है ।

इसके आगे बताते हुए हस्तांगुलियों और बाहुओं का संचालन प्रकार, अंगो के अभिनय, चारीविद्यान जिसमें भौमी चारी तथा आकाश की चारी का वर्णन है । तद्उपरांत स्थान का वर्णन भी है । जिसके अंतर्गत आसन स्थान के प्रकार दिये गए हैं । आगे बतलाते हुए सौष्ठव, मण्डलप्रचार जिसमें भौमिकमण्डल तथा आकाशिक मण्डल का वर्णन । गतिप्रचार, पात्रप्रवेश, रसगति, विविध पात्रो की गति, गति के अनुरूप संगीत तत्व, स्थानक या स्थान के प्रकार जिसमें उवहित्थस्थान तथा अश्वकान्तकस्थान बताया है। आसन और शयन का विधान भी दिया गया है । इसके उपरांत अंगभंग का भी विवरण दिया है । जिसमें अभंग, समभंग, त्रिभंग तथा अतिभंग का वर्णन है और इसमें अभिनय में सौष्ठव का स्थान क्या है उसका भी वर्णन दिया गया है । भरतमुनि रचित नाटयशास्त्र में अभिनय के अंतर्गत आंगिक अभिनय में होने वाले मुखज, चेष्टाकृत तथा शरीर द्वारा होने वाले आंगिक अभिनय में हम यहाँ प्रथम मुखज अभिनय जो मुख द्वारा होता है उस विषय में प्रथम आगे बढेंगे जिसमें हम मुखज अभिनय का वर्णन दिया गया है ।

2.4.1 **शिरोभिनय :**

आकम्पित : शिर को ऊपर तथा नीचे की और धीरे से हिलाने को आकम्पित कहते हैं ।

कम्पित् : शिर को द्रुत गति में ऊपर–नीचे हिलाने से कम्पित होता है ।

धुत : मस्तक की आजु–बाजु धीरे–धीरे हिलाने को धुत कहते हैं ।

विद्युत : मस्तक की तीव्रता से आजु–बाजु हिलाने को विद्युत कहते हैं ।

परिवाहित : मस्तक की दोनो पार्श्व की ओर एक के बाद एक कम्पित किया जाए तो उसे परिवाहित कहते हैं ।

आधूत : मस्तक को पार्श्व की ओर तिच्छा और एक बार कम्पित करें तो उसे आधूत कहते हैं ।

अवधूत : मस्तिष्क को नीचे की ओर एक बार ही कम्पित यानि हिलाया जाए तो इसे ''अवधूत'' कहते हैं ।

अंचित : गरदन को एक ओर झुकाया जाए तो उसे अंचित कहते हैं ।

निहंचित् : इसमें कन्धों को ऊपर की ओर फैलाकर गर्दन को एक ओर संकुचित किया जाता है ।

परावृत्त : चेहरे को गोलाकार में घूमाने की क्रिया परावृत्त कहलाती है ।

उत्क्षिप्त : शिर को ऊपर की ओर उठाके ऊपर देखने की क्रिया उत्क्षिप्त कहते हैं ।
अधोगत : शिर को नीचे की

ओर झुकाने की क्रिया को अधोगत कहा जाता है ।

लोलित : मस्तिष्क को चारो तरफ घुमाने की क्रिया लोलित है । नाटयशास्त्र में दिए गए आंगिक अभिनय में प्रथम शिरो भेद बताएँ गए है । शिरो भेद 13 प्रकार के हैं ।

2.4.2 अंगहार :

नाटयशास्त्र के चतुर्थ अध्याय में बत्तीस अंगहार बताए गए हैं । जो इस प्रकार है – स्थिरहस्त , पर्यस्तक ,सूचीविद्ध , अपविद्ध, आक्षिप्तक, उद्धुट्टित , विष्कम्भ , अपराजित , विष्कम्भापसृत, मत्ताक्रीड , स्वस्तिकरेचित्त , पार्श्वस्वस्तिक , वृश्चिकापसृत , भ्रमर , मत्तस्खलित , मदविलासित , गतिमण्डल , परिच्छिन्न, परिवृत्तरेचित , वैषाखरेचित , परावृत्त , अलातक, पार्श्वच्छेद , विद्युद्भ्रान्त , ऊरूद्वृत्त ,आलीढ , रेचित , आच्छुरित, आक्षिप्तरेचित , सम्भ्रान्त , अपसर्प , अर्धनिकुट्टक । यह सभी अंगहार करणो के द्वारा निष्पन्न होते हैं ।

अंगहारो के लक्षण नाटयशास्त्र में इस प्रकार बताए गए हैं है ।

स्थिरहस्त : दोनों हाथों को ऊपर की और फैलाकर उत्क्षिप्त करें तथा 'समपाद' स्थान का प्रदर्शन करने के बाद हाथ को ऊपर की और 'व्यंसित' तथा 'अपव्यंसित' अवस्था में फैलाया जाए तथा प्रत्यालीढ में स्थित होकर निकुटित उरूदवृत्त आक्षिप्त स्वस्तिक नितम्ब, करिहस्त तथा कटिच्छिन्न करणों को प्रदर्शित करें तो 'स्थिरहस्त' नाम का 'अंगहार' बन जाता है । यह भगवान शिव का बहुत प्रिय है ।

पर्यस्तक : तलपुष्पपुट, अपविद्ध तथा वर्तित एवं निकुटित को क्रमषः प्रदर्शित कर फिर उरूद्वृत्त, आक्षिप्त, उरोमण्डल, नितम्ब, करिहस्त तथा कटिच्छिन्न को प्रदर्शित करें तो पर्यस्तक नामक अंगहार बन जाता है । यह भगवान शंकर से उत्पन्न हुआ है ।

सूचीविद्ध : हाथों से अलपल्लव तथा सूची मुद्राओं के प्रदर्शन के उपरांत की जाती है। फिर उसके बाद विक्षिप्त, आवर्तित, निकुट्टक, उरूद्वृत्त, आक्षिप्त, उरोमण्डल, करिहस्त तथा कटिच्छिन्न करणों के क्रमषः प्रदर्शन करने पर 'सूचीविद्ध' अंगहार होता है ।

अपविद्ध : अपविद्ध तथा सूचीबद्ध करणों का प्रदर्शन करने के बाद हाथों से उद्वेषित करण का प्रदर्शन किया जाता है जो हाथों तथा त्रिक को एक घुमाव देते हुए हो फिर उरोमण्डल मुद्रा में हस्तो को स्थित कर कटिच्छन्न करण का प्रदर्शन किया जाए तो 'अपविद्ध' नामक अंगहार होता है ।

आक्षिप्तक : 'नुपुर' करण का प्रदर्शन करने के बाद विक्षिप्त, अलातक, आक्षिप्त, उरोमण्डल, नितम्ब, करिहस्त तथा कटिच्छिन्न करणों का क्रमषः प्रदर्शन करें तो 'आक्षिप्तक' अंगहार कहलाता है ।

उद्घट्टित : दाहिने हाथ को उद्वेषित तथा अपविद्ध हस्त मुद्राओं में दाहिने पैर को 'निकुट्टक' में बांये, दांये प्रदर्शित करते हुए दोनों हाथों को उरोमण्डल मुद्रा में रखें । उसके बाद नितम्ब करिहस्त तथा कटिच्छिन्न करणों का प्रदर्शन करे तो 'उद्घट्टित' अंगहार कहलाता है ।

विष्कम्भ : यदि दोनों हाथ क्रमशः उद्वेषित और पैर निकुट्टक मुद्रा में रखकर फिर सिकुडा और घुमा लिए जाएं और उसके बाद ऊरूदवृत्त करण का प्रदर्शन करते हुए हाथों को चतुरस्त्र और पैर को निकुट्टक मुद्रा में रखा जाएं उसके बाद भुजंगत्रासित

करण हाथों को उद्धेशित मुद्रा में रखें । तब छिन्न और 'भ्रमरक' करणों का प्रदर्शन करते हुए कटि को घुमाया जाए और फिर करिहस्त और कटिच्छिन्न करणों का प्रदर्शन करें तो 'विष्कम्भ्' नामक अंगहार होता है ।

अपराजित : दण्डपाद करण का प्रदर्शन करने के बाद दोनों हाथों को विक्षिप्त और आक्षिप्त क्रिया से युक्त रखें । उसके बाद व्याक्षिप्त करण का प्रदर्शन करें जिसमें बांया हाथ–पैर के अनुसार गतिशील रहें । फिर भुजंगत्रासिता करण का प्रदर्शन करें और हाथ उद्धेशित मुद्रा में रखा जाए फिर चातुर्यपूर्ण दो निकुट्टक, आक्षिप्त उरोमण्डल, कटिरहस्त तथा कटिच्छिन्न करणों को क्रमशः प्रदर्शन करें तो इसे 'अपराजित' अंगहार कहा जाता है ।

विष्कम्भापसृतः भुजंगत्रासिता करणों को प्रदर्शित कर फिर रेचित हस्त के द्वारा 'पताक' मुद्रा का प्रदर्शन करें । उसके बाद आक्षिप्तक उरोमण्डल करणों का तथा लताहस्त में कटिच्छन्न करण का प्रदर्शन करें तो उसे 'विष्कम्भापसृत' अंगहार होता है ।

मत्ताकीड : कटि को एक सुंदर घुमाव दिया जाए और 'नूपुर' का प्रदर्शन करें उसके बाद भुजंगत्रासित तथा वैषाखरेचित करणों का प्रदर्शन किया जाता है । फिर क्रमश : ध्यानपूर्वक आक्षिप्त, छिन्न, बाह्यभ्रमरक, उरोमण्डल, नितम्ब, करिहस्त तथा कटिच्छिन्न करणों को प्रदर्शित करें तो भगवान शिव को प्रिय लगने वाला 'मत्ताकीड' नामक अंगहार बनता है ।

स्वस्तिकरेचित : हाथ और पैरों को रेचित मुद्रा में रखकर वृश्चिक करण का प्रदर्शन किया जाए और इसी करण को हाथ और पैरों की क्रियाओं के योग द्वारा आवृत्ति कि जाए । फिर निकुट्टक करण का क्रमशः सीधे और बांए अंगों से प्रदर्शित किया जाए तो स्वस्तिकरेचित नामक अंगहार बनता है ।

पार्श्वस्वस्तिक : एक पार्ष्व से स्वस्तिक और फिर अर्धानिकुट्टक का प्रदर्शन कर इन्हें दूसरे पार्ष्व से पुनः आवृत्त करें । फिर हाथ को आवृत्त मुद्रा में रखकर कटि प्रदेश पर स्थापित किया जाए और एक के बाद एक ऊरूदवृत्त, आक्षिप्त, नितम्ब, करिहस्त और कटिछिन्न करणें को प्रदर्शन करे तो पार्ष्वस्वस्तिक अंगहार कहा जाता है ।

वृश्चिकापमृत : वृश्चिक करण का प्रदर्षन कर हाथ को लता मुद्रा में रखे फिर उसी मुद्रा को नासिका के बराबर ले जाकर झुका ले फिर वहीं हाथ उद्वेष्टित मुद्रा में रखकर कमर को गोलाकार में घुमाएं । उसके बाद क्रमषः करिहस्त तथा कटिच्छिन्न करणों को प्रदर्षित करें तो 'वृष्चिकापसृत' करण कहा जाता है ।

भ्रमर : नूपुरपाद चारी के बाद आक्षिप्तक, कटिच्छिन्न, सूचीपाद, नितम्ब, करिहस्त, उरोमण्डल और कटिच्छिन्न करणों का क्रमशः प्रदर्शन करे तो वह अंगहार 'भ्रमर' कहलाता है ।

भृत्तस्खलित : भतल्लि करण को प्रदर्शित कर दाहिने हाथ को एक गोल घुमाव देकर तथा फिर उसे झुकाकर कपोल प्रदेश के बराबर रख दें । फिर क्रमशः अपविद्ध तलसंस्फोटित करिहस्त तथा कटिच्छिन्न करणों का प्रदर्शन किया जाए तो वह 'मतस्खलितक' अंगहार कहा जाता है ।

मदविलसित : हिलते हुए दोनों हाथों को दोला मुद्रा में और पैरों को स्वस्तिकाय सृत करें सीधे हाथ को अंचित, वलित और तलसंघद्धित मुद्रा में स्थित करें । फिर तत्परतापूर्वक क्रमशः निकुट्टक, ऊरूवृद्धत, करिहस्त तथा कटिच्छिन्न करणों को प्रदर्शित करें तो 'मदविलसित' नामक अंगहार होता है ।

गतिमण्डल : मण्डलस्थान का प्रदर्शन कर दोनों हाथों को रेचित मुद्रा में और पैंरो को उद्धट्टित मुद्रा में रखा जाए । फिर उसके बाद क्रमशः मतल्ली, आक्षिप्त, उरोमण्डल और कटिच्छिन्न करणों का प्रदर्शन करें तो 'गतिमण्डल' नामक अंगहार होता है ।

परिच्छिन्न : समपाद स्थान को प्रदर्शित कर फिर 'परिच्छिन्न' करण का प्रदर्शन करें और फिर आविद्ध पैर के द्वारा बाह्यभ्रमरक या चारी का प्रदर्शन करें और बांये पैर से सूची चारी के द्वारा अर्धसूची करण का फिर क्रमशः अतिकान्त भुजंगमासित्त, करिहस्त तथा कटिच्छिन्न करणों का प्रदर्शन करें तो परिच्छिन्न नामक अंगहार बनता है ।

परिवृत्तक रेचित : दोनों हाथों को स्वस्तिक मुद्रा में मष्तक पर रखते हुए स्थापित करें फिर बांया हाथ रेचित करते हुए शरीर को झुका के उसके बाद शरीर को ऊपर की और तान कर हाथ को रेचित मुद्रा में रखें और पुनः दोनों हाथों के द्वारा लता मुद्रा का प्रदर्शन

किया जाए । फिर क्रमशः वृश्चिक, रेचित, करिहस्त, भुजंग़त्रासित और आक्षिप्तक करणों का प्रदर्शन किया जाए फिर स्वस्तिक पाद को रखते हुए उक्त विधान को पुनः उल्टे घुमाव के साथ आवृत्त करें और अन्त में करिहस्त और कटिच्छिन्न करणों का प्रदर्शन करें तो परिवृत्तक रेचित नामक अंगहार होता है ।

वैशाखरेचित : शरीर के साथ दोनों हाथों को रेचित कर 'अपविद्ध' मुद्रा में रखें फिर शरीर को झुकाते हुए उसी प्रकार पुनः आवृत्त कर दें । फिर नूपुर तथा भुजंगत्रासिता रेचित एवं मण्डलस्वस्तिक करणों का प्रदर्शन करें और बाहु तथा मस्तक को सिकुडाने के पश्चात् ऊरूद्वृत्त, आक्षिप्तक, उरोमण्डल, करिहस्त तथा कटिच्छिन्न करणों का प्रदर्शन करें तो उसे 'वैशाखरेचित' अंगहार कहा जाता है ।

परावृत्त : सर्वप्रथम 'जनित' करण को प्रदर्शित कर एक पैर को आगे बढाए फिर उसके बाद 'अलात' करण का प्रदर्शन कर कटि को घुमा दें फिर बांए हाथ को झुकाकर गण्डस्थल पर कुट्टन करें और कटिच्छिन्न करण का प्रदर्शन करें तो 'परावृत्त' नामक अंगहार होता है ।

अलातक : 'स्वस्तिक' करण को प्रदर्शित कर दोनों हाथों को व्यसित रखें फिर क्रमशः अलातक, उर्ध्वजानु, निकुंचित, अर्धसूची, विक्षिप्त, उद्वृत्त, कटिहस्त तथा कटिच्छिन्न करणों का प्रदर्शन किया जाए तो उसे 'अलातक' नाम के अंगहार से जाना जाता है।

पार्श्वच्छेद : 'निकुट्टित' मुद्रा वाले हाथों को वक्षःस्थल पर रखें तथा उर्ध्वजानु आक्षिप्त तथा स्वस्तिक करणों को प्रदर्शित करके कटि को एक घुमाव दें और उसके बाद क्रमशः उरोमण्डल, नितम्ब, करिहस्त और कटिच्छिन्न करणों को प्रदर्शित किया जाए तो 'पार्ष्वच्छेद' नामक अंगहार होता है ।

विद्युद्भ्रान्त : बांए पैर द्वारा 'सूची' चारी का प्रदर्शन कर दाहिने पैर द्वारा 'विद्युदभ्रान्त' करण का प्रदर्शन करें फिर दाहिने पैर द्वारा 'सूची' चारी और बांये पैर द्वारा विद्युभ्रान्त करण को प्रदर्शित किया जाता है । फिर 'छिन्न' करण को प्रदर्शित कर कटि को घुमाव दें और इसके पष्चात् लताहस्त के साथ लतावृष्चिक और बाद में कटिच्छिन्न करण को प्रदर्शित करें तो 'विद्युद्भ्रान्त' नामक अंगहार होता है ।

उद्वृत्तक : 'नूपुरपाद' चारी को दाहिने और बांये हाथ को झुलाते हुए प्रदर्शित करके दोनों हाथों को वैसे ही प्रदर्शित कर 'विक्षित' करण को प्रदर्शित किया जाए । फिर वैसे ही हाथों से 'सूची' करण को प्रदर्शित करें और कटि को एक घुमाव दिया जाए तथा कटिच्छिन्न करणों का प्रदर्शन करें तो 'उदवृत्तक' नामक अंगहार बनता है ।

आलीढ़ : आलीढ स्थान के साथ 'व्यंसित' करण को प्रदर्शित करते हुए दोनों हाथों को बाहुआ के कोनों पर पीटे उसके बाद बांये पैर से 'नूपुर' करण को तथा दाहिने से 'अलात' करण को प्रदर्शित करके उसी के द्वारा फिर 'आक्षिप्तक' करण भी प्रदर्शित किया जाए । तत्पष्चात् दोनों हाथों द्वारा 'उरोमण्डल' मुद्राओं को प्रदर्शित करते हुए करिहस्त और कटिच्छिन्न करणों को प्रदर्शित करें तो 'आलीढ़' नाम का अंगहार बनता है ।

रेचित : 'रेचित' हस्त को बाजू में ले जाकर 'रेचित' अवस्था में नमाए फिर उसी 'रेचित' अवस्था में सारे शरीर को झुकाते हुए प्रदर्शित करे और फिर रेचित, उरोमण्डल तथा कटिच्छिन्न करणों को प्रदर्शित किया जाए तो 'रेचित' नामक अंगहार कहा जाता है।

आच्छुरित : 'नूपुर' करण को प्रदर्शित करके कटि को एक घुमाव दें और फिर 'व्यंसित' करण का प्रदर्शन कर कटि को एक चक्कर दिया जाए फिर बांए पैर से 'अलातक' करण को प्रदर्शित कर सूची, करिहस्त तथा कटिच्छिन्न करणों को प्रदर्शित करें तो उसे 'आच्छुरित' अंगहार कहा जाता है ।

आक्षिप्तरेचित : दोनों स्वस्तिकपाद 'रेचित' हो तथा इसी प्रकार स्वस्तिक हाथ भी रहें और फिर वे 'रेचित' क्रिया के द्वारा ही पृथक हों और फिर रेचित क्रिया के द्वारा उन्हें उपर की और उछाला जाए । फिर उद्वृत्त, आक्षिप्तक, उरोमण्डल, नितम्ब, कटिहस्त तथा कटिच्छिन्न करणों को क्रमषः प्रदर्शित किया जाएं तो उसे 'आक्षिप्तरेचित' नामक अंगहार से जाना जाता है ।

समभ्रान्त : विक्षिप्त करण को प्रदर्शित कर दोनों हाथ और पैरों को मुख की अनुगामिनी स्थित में रखते हुए बांए हाथ को 'सूची' मुद्रा में विक्षिप्त किया जाए तथा दाहिने हाथ को वक्षःस्थल पर रख लें फिर कटि को एक घुमाव दें । फिर क्रमशः नूपुर, आक्षिप्तक,

अर्धस्वस्तिक, नितम्ब, करिहस्त, उरोमण्डल तथा कटिच्छिन्न करणों का प्रदर्शन करें तो 'सम्भ्रान्त' नामक अंगहार बनता है ।

अपसर्पितक : 'अपक्रान्त' करण को प्रदर्शित करते हुए 'व्यंसित' करण को केवल हाथों से प्रदर्शित करें तथा हाथों को उद्वेष्टित मुद्रा में कम्पित करते हुए फिर अर्धसूची विक्षिप्त, कटिच्छिन्न उद्‌वृत्त, आक्षिप्तक, करिहस्त तथा कटिच्छिन्न करणों को प्रदर्शित किया जाए तो अपसर्पितक अंगहार कहलाता है ।

2.4.3 रेचक :

नाट्यशास्त्र में रेचक चार प्रकार बताए गए हैं – चादरेचक ,कटिरेचक, हस्तरेचक, ग्रीवारेचक । रेचक पृथक–पृथक या स्वतन्त्र रूप में एक गोल घुमाव लेने के अर्थ में प्रयुक्त होता है । यह ऊपर की और गतिशील होने के कारण भी इसे 'रेचक' कहा जाता है ।

पादरेचक : स्खलित गति वाले या दो भिन्न गतियों वाले पैरों को एक बाजू से दूसरी बाजू की और विभिन्न गतियों द्वारा चलाया जाए तो इसे 'पादरेचक' कहा जाता है ।

कटिरेचक : कटि को ऊपर की और उठाया जाए या कटि को एक चक्कर दे दिया जाए और फिर उसे पीछे की और हटा दिया जाए तो इसे 'कटिरेचक' कहा जाता है।

हस्तरेचक : हाथों को ऊपर की और तानना, झुकना या उसे बाजू से झुका लेना, घुमाव लेना 'ग्रीवारेचक' कहलाता है । इन रेचक तथा अंगहारों से युक्त गवि को नृत्य करते देख पार्वतीने भी सुकुमार प्रयोग से युक्त एक नृत्य किया और इस नृत्य की मृदंग भेरी, चटह, भाण्ड, डिण्डम, गोमुख, पणव तथा दर्दुर नामक वाद्यों द्वारा संगत की गई । ऐसा होने पर दक्ष के यज्ञ के ध्वंस के पश्चात् किसी सन्ध्या में भगवान शिव ने अनेक लय तथा ताल के अनुसार अंगहारों से युक्त होकर नृत्य किया ।

नृत्य में हस्त तथा पादों के हलन–चलन करने की प्रक्रिया को 'करण' कहा जाता है। दो कर्णो के संयोग से एक मातृका बनती है और दो, तीन या चारा मातृकाओ से एक अंगहार बनता है । तीन करणो से एक कलापक बनता हे और चार करणों से एक

मण्डल बनता है और पाँच करणों के माध्यम से संघतक की रचना होती है इसी प्रकार छ,सात,आठ तथा नौ करणों के द्वारा अंगहार बनता है । करण एकसो आठ हैं। करण में बाँया हाथ छाती पर तथा दाहिना हाथ दाहिने चरण की स्थिति के अनुसार होना चाहिए । स्थान, चारियों तथा नृतहस्त जो भी कहे गए हैं वह मातृकाएँ कही जाती है और इनके मिलने से मातृकाएँ बनती है । जहाँ कमर तथा कान समान स्थिति वाले है । मस्तक तथा बाजुएँ भी ऐसे ही हो और छाती ऊँची उठाई जाए तो उसे सौष्ठवांग कहते हैं ।

2.4.4 करण :

करण एक सौ आठ है । जो इस प्रकार है –

तलपुष्पपुट : 'पुष्पपुट' हस्त को बायीं और रखा जाए और पैर रखते हुए कोख को झुकी हुई रखे तो उसे 'तलपुष्पटक' करण कहा जाता है ।

वर्तित : व्यावृत्त तथा 'परिवर्तित' हस्तो को कलाई पर झुके हुए रखे और दोनों हाथों को जंघाओं के उपर रखे तो उसे 'वर्तित' करण कहा जाता हे।

बलितोरु : शुकतुण्ड मुद्रा वाले हाथ व्यावृत्त और परिवर्तित हो और जंघाए 'वलित' मुद्रा रखी जाए तो 'बालतोरू' करण कहा जाता है ।

अपविद्ध : दाहिने हाथ को शुकतुण्ड मुद्रा बनाकर दाहिनी जंघा पर रखने से और बांये हाथ को वक्षस्थल पर रखने से अपविद्र करण बनता है ।

समनख : जब दोनों पैरो को समनख अवस्था में एक–दूसरे को छूते हुए रखे जाए और दोनों हाथों को लम्बे करते हुए नीचे की तरफ हिलाते हुए रखें और इसी समय उपरांत पूरा शरीर स्वाभाविक अवस्था में रहे तो उसे 'समनख' करण कहा जाता है ।

लीन : दोनों हस्त को पताक मुद्रा में रखकर वक्षःस्थल के समीप अंजली मुद्रा में रखा जाए और गर्दन ऊपर और कन्धे झुके हुए हो तो इसे 'लीन' करण कहा जाता है ।

स्वस्तिरेचित : हाथो में 'रेचित' तथा 'आविद्र' मुद्रा बनाकर हाथों को मिलाते हुए स्वस्तिक बनाए फिर उन्हें हटाकर कटि पर रख लिया जाए तो 'स्वस्तिरेचित' करण कहा जाता है ।

मण्डलस्वस्तिक : दोनों हाथों को संयुक्त करके उन्हें घुमाते हुए स्वस्तिक मुद्रा में रखें और हाथो के तले सामने तथा ऊपर की और घूमते हुए रखें और शरीर को मण्डल स्थान में रखें तो 'मण्डलस्वस्तिक' करण कहलाता है ।

निकुट्टक : भुजा और मष्तक के बीच हाथों और पैरो को भी निकुद्रित दिशा में रखें तो उसे 'निकुद्रित' करण कहा जाता है।

अर्धनिकुट्टक : अच्विण हाथों को सामने की ओर रखकर पिंडलियों को ऊपर–नीचे झुकाएँ तो उसे 'अर्धनिकुट्टक' करण कहलाता है ।

कटिच्छिन्न : कटि छिन्न मुद्रा में और दोनों हाथ 'पल्लव' मुद्रा में मस्तक पर रखे जाए ँ और यही क्रिया बार–बार करें तो इसे 'कटिच्छिन्न' करण कहते हैं ।

अर्धरेचितक : हाथ को सूचीमुख मुद्रा में रखे पैर को क्रमशः ऊपर–नीचे हिलाए और कोख को नत मुद्रा में रखे तो उसे अर्धरेचित करण कहा जाता है ।

वक्षःस्वस्तिक : दोनों पैर परस्पर स्वस्तिक दिशा में हो तथा दोनों हाथ रेचित मुद्रा बनाते हुए उन्हें वक्षःस्थल तक ले जाएँ और वक्षःस्थल को भी थोड़ा झुका लें तो उसे वक्ष :स्वस्तिक कहा जाता है ।

उन्मत : दोनों पैर अंचित और दोनों हाथ 'रेचित' दिशा में हो तो उसे उन्मत करण कहा जाता है ।

पृष्ठस्वस्तिक : दोनों हाथ झटके के साथ ऊपर तथा नीचे स्वस्तिक मुद्रा में किए जाए ँ और दोनों पैर 'अपक्रान्ता' और अर्धसूची चारियों के साथ स्वस्तिक बनाए तो वह 'पृष्ठस्वस्तिक' करण कहलाता है ।

दिक्स्वस्तिक : कोख तथा दोनों हाथ–पैर स्वस्तिक मुद्रा में रहें तो उसे 'दिक्स्वस्तिक' करण कहलाता है ।

अलात : हाथ को आलात चारी करते हुए कन्धे के बराबर से नीचे उतारे फिर 'ऊर्ध्वजानु' चारी को सम्पादित करें तो 'अलात' करण कहलाता है।

कटीसम : पैर को स्वस्तिककरण के पष्चात् पृथक रखा जाएं और दोनों हाथ नाभि तथा कटि पर रखे और कोख उद्धाहित चेष्टा में रखी हो तो 'कटीसम' करण कहा जाता है ।

आक्षिप्तरेचित : बांया हाथ हृदय पर और सीधा 'रेचित' मुद्रा बनाकर ऊपर तथा कोनों में उछाला जाए उसके बाद दोनों हाथ 'रेचित' तथा अपविद्र मुद्रा में रखें तो 'आक्षिप्तरेचित' करण कहलाता है ।

विक्षिप्ताक्षिप्तक : दोनों हाथों और पैरों को ऊपर उछाले और फिर उन्हें नीचे पटका जाएँ तो उसे विक्षिप्ताक्षिप्तक करण कहलाता है ।

अर्धस्वस्तिक : बांया हाथ वक्षःस्थल पे स्थित रखा जाए और हाथ सीधा करिहस्त मुद्रा में रखा जाए तथा दोनों पैर स्वस्तिक बनाया जाए तो इस स्थिति को 'अर्धस्वस्तिक' करण कहलाता है ।

अंचित : अर्ध स्वस्तिक की अवस्था में करिहत मुद्रा वाला हाथ व्यावृत तथा परिवृत रखा जाए और फिर उसे 'नासिका' को अग्रभाग की और झुका लिया जाए तो अंचित करण कहलाता है ।

भुजंगत्रासित : कुंचित मुद्रा वाले पैरो को ऊपर उछाल कर उसको तिरछा घुमा दिया जाए और कटि और जंघा भी उसी के साथ–साथ घुमा ले तो उसे भुजंगत्रासिता करण कहा जाता है ।

उर्ध्वजानु : दोनों हाथों को नृत्य के प्रयोग के अनुकुल रखकर कुचित पाद को ऊपर की और फैलाया जाए तो उसे 'उर्ध्वजानु' करण कहा जाता है ।

निकुंचित : पैरो को वृष्चिक में रखकर हाथ को कोख की और झुका ले और सीधे हाथ को नाक की नोंक के अग्रभाग पर झुकाकर रखे तो उसे निकुंचित करण कहा जाता है ।

मत्तल्लि : बाएं तथा सीधे पैरों के द्वारा एक चक्करदार घुमाव लेकर फिर उसे पृथ्वी पर पटके और दोनों हाथ उद्वेषित और अपविद्ध गति को प्रदर्शित करे तो उसे 'मत्तल्लि' करण कहा जाता है ।

अर्द्धमत्तलि : बाएं हाथ को रेचित मुद्रा में और दांए हाथ को कटि पर रख लें और पैरों को रखलित करण में पीछे की और हटा लिया जाए तो उसे अर्द्धमत्तलि करण कहा जाता है ।

रेचितनिकुट्टित : सीधा हाथ रेचित तथा दाहिना पैर उद्घट्टित और बांया हाथ डोला मुद्रा में रखा जाए तो उसे 'रेचित निकुट्टित करण कहा जाता है ।

पादापविद्धक : दोनों हाथों में कटकामुख मुद्रा बनाकर नाभि के पास हथेलियों को सामने की ओर रखें तथा दोनों पैर सूची चारी से युक्त हो तो पादापविद्धक करण कहलाता है ।

वलित : हाथों में अपविद्ध मुद्रा बनाई जाए और पैर सूची चारी में रखकर त्रिक अर्थात् अपने अधोभाग सहित पीठ के भाग को घुमाएं तो उसे वलित करण कहा जाता है ।

घूर्णित : दाहिना हाथ वलित मुद्रा में घुमाया जाए और बांया हाथ डोला मुद्रा में घुमाए तथा दोनों पैर स्वस्तिक दशा में रखकर परस्पर एक–दूसरे से दूर कर लिये जाए तो 'घ ूर्णित' करण कहा जाता है ।

ललित : दोनों पैर ऊपर नीचे कई बार पटके जाए और बांया हाथ करिहस्त मुद्रा में और सीधा हाथ अपवर्तित दिशा में घुमाया जाए तो उसे ललित करण कहा जाता है।

दण्डपक्ष : दोनों हाथ में लता मुद्रा बनाकर उसे घुटने पर रखे और ऊर्ध्वजानु को प्रदर्षित करे तो इसे दण्डपक्ष करण कहा जाता है ।

भुजंगत्रऋस्तरेचित : भुजनत्रासित चारी को प्रदर्शित कर दोनों हाथों को 'रेचित' मुद्रा में रखा जाए और उन्हें बांए कोख की और मोड लें तो इसे भुजंगत्रस्तरेचित करण कहते हैं ।

नूपुर : कटि को आकर्षक पद्धति से घुमाए और दोनों हाथों से लता या रेचित मुद्रा बनाई जाए और पैरों द्वारा नुपुरपादचारी का प्रदर्शन किया जाए तो उसे 'नूपुर' करण कहा जाता है ।

वैशाखरेचित : हाथ और पैरो को रेचित मुद्रा में रखकर कटि और ग्रीवा भी रेचित मुद्रा प्रदर्शित करें तथा शेष अंग वैशाखस्थान में रहें तो इसे वैषाखरेचित करण कहते हैं ।

भ्रमरक : स्वस्तिक पैरों को आक्षिप्त चारी में रखकर हाथों को उद्वेष्टित अवस्था में रखे और त्रिक को चारो और घुमाएं तो 'भ्रमरक' करण बन जाता है ।

चतुर : बांये हाथ से अंचित मुद्रा तथा दांये हाथ से चतुर मुद्रा बनाएँ और दांये पैर कुट्टित मुद्रा में हो तो उसे चतुर करण हो जाता है ।

भुजंगाश्रित : भुजंगात्रासित चारी में दाहिना हाथ रेचित मुद्रा में तथा बांया हाथ लता मुद्रा में रखा जाए तो उसे भुजंगाश्रित करण कहा जाता है ।

दण्डकरेचितक : हाथ और पैरो को सीधे दण्ड के समान चारों और झटके से सीधा करें फिर हाथ और पैरों को 'रेचित' मुद्रा में रख लें तो दण्डकरेचितक करण कहलाता है ।

वृश्चिक कुट्टित : वृष्चिक करण प्रदर्शित कर दोनों हाथों को निकुट्टित करें तो वृश्चिक कुट्टित करण कहलाता है।

कटिभ्रान्त : पैर 'सूची' चारी में करने के बाद बांया पैर अपविद्ध मुद्रा में रखें तथा कटि रेचित रखी जाएँ तो कटिभ्रान्त करण कहलाता है ।

लतावृश्चिक : एक पैर 'अंचित' मुद्रा में पीछे की और घुमा हुआ रखा जाए तथा बांया हाथ लता मुद्रा से युक्त हो और उसका पंजा और अंगुलियाँ सिकुड़ी हुई और ऊपर की और रखी जाएं तो वह लतावृश्चिक करण होता है ।

छिन्न : दोनों हाथों में अलपदम मुद्रा बनाकर कटि पर रखे तथा कटि 'च्छिन्न' मुद्रा में रहें और क्रमशः इस मुद्रा में स्थित नर्तक शेष अंग को वैषाखस्थान में रखें तो 'छिन्न' करण कहलाता है ।

वृश्चिकरेचित : वृष्चिक चरण को प्रदर्शित करके दोनों हाथों को 'स्वस्तिक' मुद्रा में रखकर रेचित और विप्रकीण करें तो वह करण 'वृष्चिकरेचित' कहा जाता है।

वृश्चिक : दोनों हाथ झुके हुए हो और दोनों हाथ कन्धों के ऊपर रखे हों तथा पैर झुका और पीठ के पीछे की और घूमते हुए रखा जाए और पीठ 'नत' मुद्रा में हों तो उस करण को 'वृष्चिक' करण कहा जाता है ।

व्यंसित : आलीढस्थान के प्रदर्शन के साथ दोनों हाथों में रेचित मुद्रा बनाकर उसे वक्षस्थल पर रखा जाए और उसे ऊपर और नीचे की और हिलाया जाए तो उसे व्यंसित करण कहा जाता है ।

पार्श्वनिकुट्टित : दोनों हाथों में स्वस्तिक मुद्रा बनाए और दोनो हाथों को बाजुओं में रखें और पैर निकुट्टित हो तो बुधजन उसे पार्श्वनिकुट्टित करण कहा जाता है ।

ललाटतिलक : वृष्चिक चरण के प्रदर्शन के बाद पैर के अंगूठे को ललाट तक ले जाकर तिलक अंकित करने का भाव प्रदर्शित करे तो उसे ललाटतिलक करण कहा जाता है ।

कान्तक : एक पैर से कुचित मुद्रा बनाकर पीछे की ओर रखे तथा अतिकान्ता चारी में चारों और घुमाते हुए रखें और दोनों हाथों को नीचे की और पटके तो वह करण कान्तक कहलाता है ।

कुंचित : पैर को झुकाकर अंचित मुद्रा में रखें और दाहिने हाथ को कुंचित रखे जो बायीं कोख पर ऊपर की और पंजे वाला होकर रखा जाय तो वह कुचिंत करण कहलाता है ।

चक्रमंडल : अपविद्र चारी के अंदर शरीर को झुकाकर सीधी भुजाओं से युक्त रखें तो वह करण 'चक्र मंडल' कहलाता है ।

उरोमण्डल : दोनों पैरो से स्वस्तिक मुद्रा बनाकर आगे बढाए और अपविद्र चारी का प्रयोग करके दोनों हाथों को उरोमण्डल मुद्रा में रखें तो उरोमण्डल करण कहलाता है ।

आक्षिप्त : वेग से हाथ और पैरों को झटका–पटका जाए तो उसे आक्षिप्त करण कहलाता है ।

तलविलसित : हाथों के दोनों तले सिकुडे हुए रखे जाए और पैरों को अपने तलवे और अंगुलियों सहित ऊपर की और एक और से फैलाया जाए तो उसे 'तलविलसित' करण कहा जाता है ।

अर्गल : पैर पीछे की और हटाकर ढाई ताल तक रखे तथा हाथ भी पैर के अनुसार सामने की और घूमाते हुए रखे जाएँ तो उसे अर्गल करण कहा जाता है ।

विक्षिप्त : हाथ और पैरों को पीछे तथा दोनों बगलों की और एक साथ एक–दूसरे का अनुसरण करते हुए फैंके तो उसे 'विक्षिप्त' करण कहा जाता है।

आवर्त्त : कुंचित पांव को फैलाकर शीघ्रता से लौटा लें और दोनों हाथों का प्रयोग के अनुसार रखते हुए तेज गति से घुमाव ले तो 'आवर्त्त' करण कहा जाता है ।

डोलापद : 'कुंचित' पाद को ऊपर उठाकर दोनों और क्रमः झुलाए और दोनों हाथों को इसी प्रक्रिया के अनुसार गतिशील रखें तो डोलापद करण कहा जाता है ।

विवृत्त : दोनों हाथ और पैरों को बाहर की और उछाल देकर त्रिक को एक गोल चक्कर देते हुए हाथों को 'रेचित' मुद्रा में रखें तो उसे 'विवृत्त' करण जानो ।

विनिवृत्त : सूचीविध चारी का प्रयोग करने के उपरान्त त्रिक की एक गोल घुमाव दें और हाथों को रेचित मुद्रा में रखें तो उसे 'विनिवृत्त' करण जानों ।

पार्श्वकान्ता : पार्ष्वकान्ता चारी का प्रयोग कर पैरों को आगे की और पटके तथा हाथों को नृत्य–प्रयोग के अनुसार सामने की और संचालित करें तो उसे 'पार्ष्वकान्त' करण कहा जाता है ।

निस्तम्भित : एक पैर पीछे की और ले जाए तथा छाती को ऊँची उठाकर रखी जाए । हाथ को तिलक 'निस्तम्भित' करण कहते हैं ।

विद्युद्भ्रान्त : पैर को पीछे की और घुमाकर मस्तक से लगते हुए रखा जाए तथा दोनों हाथों को मंडलाविद्ध दिशा में संचालित करें तो 'विद्युतभ्रान्त' करण कहलाता है ।

अतिक्रान्त : अतिक्रान्त चारी का प्रयोग करने के उपरान्त दोनों हाथों को नृत्य प्रयोग के अनुसार सम्मुख फैला दे तो अतिक्रान्ता करण बन जाता है ।

विवर्तितक : क्रमशः 'लता' तथा 'रेचित' मुद्रा में रखे और मस्तक को ऊपर तान ले तो विवर्तितक करण कहलाता है ।

गजक्रीडितक : बांयी हाथ बांये कान के समीप सिकुडा कर ले जाएँ और सीधा हाथ लता मुद्रा में हो और पैरों को 'दोलापाद' चारी में रखे तो 'गजक्रीडितक' करण कहा जाता है ।

तलसंस्फोंटित : एक पैर को उठाकर पटका जाए और दोनों हाथें को तल संस्फोटित मुद्रा में रखा जाए तो वह तलसंस्फोटित करण कहलाता है ।

गरूडप्लुतक : पैर पीछे की और फैलाकर दोनों हाथें को क्रमशः लेता तथा 'रेचित' मुद्रा में रखें और मस्तक को ऊपर तान ले तो गरूडप्लूतक करण कहलाता है ।

गण्डसूची : पैर सूची मुद्रा में हो तथा कोख झुकी हुई और हाथ वक्ष स्थल पर हो और दूसरा अंचित मुद्रा में कपोल प्रदेश का स्पर्श करते हुए तो 'गण्डसूची' करण कहते हैं ।

परिवृत्त : दोनों हाथ अपवेष्टित मुद्रा में ऊपर उठाए जाएँ और पैर सूची और त्रिक को 'भ्रमरी चारी' के लक्षण में घुमाया जाए तो परिवृत्त करण कहलाता है ।

पार्श्वजानु : एक पैर समपाद चारी में और दूसरा पैर उसी के उरू भाग पर रखा हो तथा 'मुष्टि' मुद्रा में एक हाथ वक्ष स्थल पर रखें तो पार्श्वजानु करण कहा जाता है।

गृध्रावलीनक : एक पैर पीछे की और फैलाकर घुटने को थोड़ा झुकाया जाए तथा दोनों हाथों को सामने फैलाया जाए तो उसे गृघ्रावलीनक करण कहा जाता है ।

सन्नत : उछलकर दोनों पैरो को स्वस्तिक बनाकर सामने की और रखे और दोनों हाथ 'सन्नत' मुद्रा में रखें तो उसे 'सन्नत' करण कहते हैं ।

सूची : कुंचित पाद को उठाकर उसे आगे की और रख दिया जाए और दोनों हाथों को नृत्य–प्रयोग के अनुसार रखें तो सूची करण कहा जाता है ।

अर्धसूची : हाथों में अलपद्रम मुद्रा बनाकर हाथ को सिर तक ले जाए और सीधा पैर 'सूची' को प्रदर्शित करें तो अर्धसूची करण कहलाता है ।

सूचीविद्ध : दोनों हाथ क्रमेशः कटि तथा वक्षः स्थल पर स्थापित किये जाए और एक पैर से सूची करण बतलाते हुए दूसरे पैर की एडी से सटा हुआ हो तो सूचीविद्ध करण कहा जाता है ।

अपक्रान्त : जंघा को वलित करने के उपरांत चरणों से अपकान्त चारी का प्रदर्शन किया जाए तथा दोनों हाथों को नृत्य प्रयोग के अनुसार रखें तो अपक्रान्ता करण कहते हैं।

मयूरललित : वृष्चिक चरण को प्रदर्शित करके दोनों हाथों को 'रेचित' तथा त्रिक को एक गोल घुमाव दिया जाए तो उसे मयुरललित करण कहा जाता है ।

सर्पित : दोनों पैरो को अंचित दिशा में हटाया जाए तथा मस्तक परिवाहित मुद्रा में तथा दोनों हाथ 'रेचित' मुद्रा में रखें तो 'सर्पित' करण कहा जाता है ।

दण्डपाद : पैरों के द्वारा नूपुर चारी करने के बाद 'दण्डपाद' चारी का प्रदर्शन करे और हाथ को शीघ्रता से 'आविद्ध' में प्रदर्शित करता चले तो 'दण्डपाद' करण कहलाता है।

हरिणप्लुत : अतिक्रान्त चारी को प्रदर्शित करने के बाद एक उछाल लेकर ठहर जाए और फिर एक जंघा सिकुडाकर ऊपर उछाली जाए तो उसे 'हरिणप्लुत' करण कहते हैं ।

प्रेंखोलित : दोलापाद चारी का प्रदर्शन कर एक उछाल लेकर चरण को नीचे पटके और त्रिक को एक घुमाव दें और फिर स्थित हो जाए तो 'प्रंखोलित' करण कहते हैं।

नितम्ब : हाथ की उंगलियों को सामने की और रखकर दोनों भुजाओं को सिर के ऊपर तक उठाए तथा पैरों से बद्धा चारी को प्रदर्शित करे तो उसे नितम्ब करण कहा जाता है ।

स्खलित : दोनों हाथों को चारों और घुमा दे तथा पैरों से दोलापाद चारी का प्रदर्शन करे तो उसे 'स्खलित' करण कहते हैं ।

करिहस्त : बांये हाथ को वक्षः स्थल पर रखकर दूसरे हाथ की हथेली पोद्धेषित हो तथा पैर 'अंचित' मुद्रा में रखा जाए तो वह करण 'करिहस्त' करण कहलाता है ।

प्रसर्पितक : एक हाथ लता मुद्रा में और दूसरा रेचित मुद्रा में रखा जाए और पैर 'तलसंचर' मुद्रा में रखा जाए तो उसे 'प्रसर्पितक' करण कहते हैं ।

सिंहविक्राडित : अलात चारी का प्रदर्शन करने के बाद दूसरे पैर की द्रुत गति करते हुए हाथों को पैरों की गति के अनुसार रखा जाएं तो उसे सिंहाविक्राडित करण कहा जाता है ।

उद्‌वृत्त : हाथ पैर और शरीर को ऊपर झटके से उछाला जाए फिर उद्‌वृत्त करण कहा जाता है ।

अपसृत्तक : पैरों से आक्षिप्त चारी का प्रदर्शन किया जाए और हाथों को उसी के अनुसार रखा जाएं और शरीर को झुका ले तो इस करण को अपसृतक कहते हैं । **तलसंघट्टित :** दोलापाद चारी का प्रयोग करने के बाद दोनों हाथों के तलों को एक–दूसरे से मलते हुए रखें। उसके बाद बांया हाथ 'रेचित' मुद्रा में रखें तो 'तलसंघट्टित' करण कहते हैं ।

जनित : एक हाथ को जुलता हुआ रखें और दूसरा हाथ छाती पर रखा जाए और एक पैर से अग्रतलसंचर चारी का प्रदर्शन करे तो 'जनित' करण कहा जाता है ।

अवहित्थ : जनित करण का प्रयोग कर दोनों हाथों को एक–दूसरे के सामने अंगुलियों वाले बताकर धीरे–धीरे नीचे की और ले जाए तो वह अवहित्थ करण कहा जाता है । दोनों हाथे को 'निर्मुग्न' वक्षः स्थल पर रखकर 'मण्डल स्थानक' का प्रदर्शन करे तो उसे 'निवेष' करण कहते हैं ।

स्वस्तिक : दोनों हाथ और पैर स्वस्तिक मुद्रा में हो तो उसे स्वस्तिक करण कहा जाता है ।

एलकाकीडित : तलसंचर पाद से एक उछाल लेकर भूमि पर आए तथा शरीर को संकुचित करते हुए घुमाए तो उसे एलकाकीडित करण जानो ।

उद्‌वृत्त : हाथ को आवृत्त दिशा में रखकर फिर उसे झुका कर ऊरू के पृष्ठ भाग पर रखे और जंघा को 'अंचित' तथा 'उद्‌वृत्त' रखा जाए तो 'उद्‌वृत्त' करण कहते हैं ।

मदस्खलित : दोनों हाथों को नीचे की और हिलाते हुए रखे तथा मस्तक को 'परिवाहित' मुद्रा में और सीधे तथा बांये पैर वलित हो 'आविद्ध' चारी को प्रदर्शित करें तो उसे 'मदस्खलितक' नामक करण कहते हैं ।

विष्णुक्रान्त : पैर को आगे की तरफ फैलाकर ऊपर ले जाते हुए सिकुडाएं तथा दोनों हाथों में रेचित मुद्रा बनाकर रखा जाए तो उसे 'विष्णुक्रान्त' करण कहा जाता है ।

सम्भ्रान्त : हाथों को व्यावर्तित मुद्रा के साथ ऊरू पर सिकुडते हुए रखा जाए तथा ऊरू को आविद्धा चारी से युक्त रखे तो उसे 'समभ्रान्त' करण कहते हैं ।

विष्कम्भ : यदि हाथों से अपविद्ध मुद्रा बनाई जाए और पैरों से सूची चारी बनाई जाए और निकुद्रित दषा में प्रदर्शित किया जाए और बांया हाथ छाती पर रखे तो वह 'विष्कम्भ' करण कहलाता है ।

उद्‌घट्टित : दोनों पैरो को 'उद्धट्टिता' चारी तथा हाथें को 'तलसंघट्टित' मुद्रा में रखकर कोख को झुका ले तो 'उद्‌घट्टित' करण होता है ।

वृषभकीडित : अलात चारी को प्रदर्शित कर फिर दोनों हाथों को रेचित मुद्रा में रखें फिर इन्हें 'कुंचित' और अंचित मुद्रा में रखे तो 'वृषभकीडित' करण कहलाता है ।

लोलित : दोनों अंचित हाथ रेचित मुद्रा में रखे जाएं तथा मस्तक को 'लोलित' और 'वर्तित' मुद्रा में तो इसे 'लोलित' करण से जाना जाता है ।

नागापसर्पित : दोनों पैरो को स्वतिक दशा में पीछे की और हटाया जाए तथा मस्तक 'परिवाहित' मुद्रा में तथा हाथ रेचित मुद्रा में रहे तो 'नागापसर्पित' करण होता है ।

शकटास्य : स्थिर बैठकर तलसंचर चारी में पैर को फैलाए तथा वक्षस्थल को उद्धाहित दषा में रखे तो उसे 'षकटास्य' करण कहते हैं ।

गंगावतरण : दोनों पैरो की उंगलियों और तल को ऊपर की और उठाते हुए रखे जाएं । दोनों हाथें को पृथ्वी पर त्रिपताक मुद्रा वाला रखे तो उस करण को 'गंगावतरण' कहते हैं।

सिंहकर्षित : एक पैर को पीछे की और हटाया जाए तथा हाथ को सिकुडा कर शरीर एक गोल घुमाव ले जो सामने और पीछे की और सिकुड़ने वाला हो तो उसे 'सिंहाकर्षित' करण कहा जाता है ।

2.4.5 हस्तमुद्रा :

भरतमुनि ने नाटयशास्त्र में **हस्तमुद्राओ** के हस्ताभिनय के बारे में नवमें अध्याय में बताया है । जो आंगिक अभिनय में विशिष्ट प्रकार से महत्वपूर्ण है। हस्ताभिनय के माध्यम से अंग, उपांगो द्वारा जो मानव चेष्टाएँ की जाती है । वह बहुत ही सुंदर और अभिव्यक्त करने में सहायता मिलती है । इसके द्वारा अन्तर भावों को स्वरूप प्रदान करता है और वह रसभूमि तक पहुंचा देता है । नाट्य का रूप हस्त के अभिनय द्वारा स्पष्ट किया जाता है और वह भावों का बोध समझने में सरलता मिलती है । भावों और रसों की आन्तरिक प्रेरणा हर एक हस्तमुद्राऐं अपने मूल में रखती है । भरतमुनि ने बडे ही विशिष्टता से हस्त के अभिनय का विवरण करके हस्ताभिनय के स्वरूप को समय, देश, काल, स्थान, कर्म और प्रचार प्रस्तुत कर उसमें करणों और अर्थयुक्ति को महत्त्व देने को कहा है । सुकुमार तथा उद्धत स्थिति को हस्तमुद्रा द्वारा स्पष्टता मिलती है ।

पात्रानुसार हस्ताभिनय : इनमें तीन प्रकार के पात्र है जिसे उत्तम पात्र, मध्यम पात्र और अद्यम पात्र है । कहा गया है जो अपने हस्तों को पात्र के अनुसार रखते हैं । जिसमें उत्तम पात्र अभिनय करते समय हस्त को ललाट और उत्तम स्थान पर ले जाते हैं ।

मध्यम पात्र वक्षा स्थल के पास और आद्यम पात्र कटि और उसके नीचे वाले शरीर को स्पर्ष करते हस्तो का उपयोग करता है । नाटक में उत्तम पात्रों को कम हस्त का प्रयोग देना चाहिए और अद्यम पात्रों को थोडे से ज्यादा हस्तप्रचार देना चाहिए और नृत्त आदि में हस्ताभिनय अधिकतम रखना चाहिए। आकर्षण और बाहरी शोभा भी हस्तप्रचार द्वारा दिखाई जा सकती है ।

हस्ताभिनय के प्रकार : भरतमुनि ने विविध मुद्राओं के आधार पर हस्ताभिनय के प्रकारों को तीन भागों में बताया है । असंयुक्तहस्त ,संयुक्तहस्त और नृत्त हस्त । इन हस्तमुद्राओं का विभाजन मूल आधार या नृत्त हस्त में किया जा सकता है । संयुक्त और असंयुक्त हस्तों को मूलमुद्रा में रखा जाता है और यह नृत्य की भाषा के मूलाक्षर माने जाते हैं । यह मुद्राएँ अलग–अलग हों या सम्मिलित हों हर स्थिति में अर्थ को स्पष्ट करती है । जैसे–जैसे कालान्तर हुआ वैसे–वैसे अनेको नृत्य परंपराओं का उद्‌भव हुआ और उनके साथ हस्तमुद्राओं का भी प्रचार हुआ और इन सभी का मूल आधार ग्रंथ नाटयशास्त्र ही है । नाटयशास्त्र में संयुक्त हस्त तेरह 13, असंयुक्त हस्त चौबीस 24 और नृत्त हस्त तीस 30 बताए गए है ।

असंयुक्त हस्त मुद्राएँ : एक हाथ में की जाने वाली हस्तमुद्रा को असंयुक्त हस्त मुद्रा कहा जाता है । नाटयशास्त्र में भरतमुनिने चौबीस प्रकार के असंयुक्त हस्त बताए है जो इस प्रकार है। नाटयशास्त्र में हर एक हस्तमुद्राओं का स्वरूप और विनियोग दिए गए हैं । इसके साथ मुद्राओं के अनेक अर्थ प्रस्तुत किए गए हैं जो चित्र द्वारा दिखए गए हैं ।

मुद्राओं की उद्‌भव की कथाएं :

मुद्राओं की उद्‌भव की कथाएं कई शास्त्रीय ग्रंथों में दी गई है । जिसको यहां प्रस्तुत किया गया है । साथ–साथ मुद्राओं में रस के समान इनका वर्ण (रंग), जाति और अधिदेवता को भी बताया गया है।

श्लोक : पातकस्त्रिपताकश्च तथा वैकर्तरीमुखः ।

अर्धचन्द्रो ह्यरालश्च शुकतुण्डस्तथैवच ।।8।।

यहां हर एक हस्त की मुद्रा, जाति, वर्ण तथा मुद्रा की उत्पत्ति की कथा 'संक्षिप्त' में बताने का प्रयास कीया है।

पताक : देवता – परब्रह्मा , जाति – ब्राह्मण , वर्ण – श्वेत । कथा : एक समय ब्रह्मा जो सृष्टि के उत्पादक है वह भगवान विष्णु के पास गए और जय घोष करके उनकी वन्दना की । इसी समय ब्रह्मा के हाथ पताके (ध्वज) के आकार में उठे और तभी से यह पताक हस्त के रूप में जाना जाता है । पताक हस्त मुद्रा प्राचीन मूर्तियों में अभय मुद्रा बताने के लिए की जाती है और यह मुद्रा के स्त्रष्टा ब्रह्माजी है ।

त्रिपताक : देवता, षिव, जाति, क्षत्रिय, वर्ण रत्क । कथा : जब इन्द्रने वज्र को ग्रहण किया उस समय उनके हाथ की तीन उंगलियां अलग होकर तीन भाग वाले ध्वज के समान हो गई तभी से त्रिपताक हस्त का प्रचलन शुरू हुआ ।

कर्तरीमुख : देवता–चक्रमणि–विष्णु जाति–क्षत्रिय वर्ण–ताम्र । कथा : भगवान शिव ने अंधकासुर का वध करने के लिए कर्तरीमुख हस्त मुद्रा धारण कर के पृथ्वी पर एक चक्कर लगाया तभी से यह हस्त किया जाता है ।

अर्धचन्द्र : देवता–महादेव, जाति–वैष्य, वर्ण–धूम्र । कथा : अर्धचन्द्र को अलंकार बनाकर जब नटराज शिवने उसे अपने मष्तक पर धारण किया तबसे अर्धचन्द्र मुद्रा का उद्‌भव हुआ ।

अराल : देवता–वासुदेव, जाति–मिश्रा, वर्ण–रत्क । शुकतुण्ड – देवता–मरीचि, जाति–ब्राह्मण, वर्ण–रत्क । कथा : भगवान शंकर के साथ प्रणय कलह करते समय गौरीने इसी हस्तका उपयोग किया था । इसी कारण इस मुद्रा का उद्‌भव गौरी द्वारा हुआ था ।

मुष्ठि : देवता–चन्द्र, जाति–शूद्र, वर्ण–नील । कथा : भगवान विष्णु ने मधुराक्षस के वध करने के समय यह हस्त धारण किया था ।

शिखर : देवता–कामदेव, जाति–गान्धर्व, वर्ण–धूलियाँ । कथा : समुद्र मंथन के लिए जब शिव द्वारा सुमेरू पर्वत को उखाडा गया तब इस हस्त का उपयोग किया गया।

कपित्थ : देवता–पद्मगर्भ–विष्णु, जाति–ऋषि । कथा : भगवान विष्णु ने समुद्र मन्थन के अवसर पर मन्दारवृक्ष को खींचकर निकाला था । उस समय इस हस्त का उपयोग किया था तभी से इस हस्त का उद्‌भव हुआ ।

कटकामुख : देवता–रघुराम, जाति–देव, वर्ण–ताम्र । कथा : भगवान शिव द्वारा जब कार्तिकेय ने शस्त्र क्रिया प्राप्त की तभी कार्तिकेय ने यह हस्त धारण किया तभी से यह हस्त का उद्‌भव हुआ ।

सूचीमुख : देवता–विष्वकर्मा, जाति–देव, वर्ण–श्वेत । कथा : ''एकोडहं'' को समझाने के लिए ब्रह्मा ने इस हस्तमुद्रा का उपयोग किया तब से ये हस्त प्रचलन में आया ।

पद्मकोष : देवता–भार्गव, जाति–यक्षीकन्नर, वर्ण–श्वेत। कथा : भगवान शिव कि स्तुति करके भगवान विष्णु ने सुदर्शन चक्र की प्राप्ति की और उन्होंने भगवान शिव को पुष्पों का अर्पण किया । उसी समय जो हस्त का उपयोग किया वह यदृमकोष था ।

सर्पशीर्ष : भगवान शिव, जाति–ऋषि, वर्ण–श्वेत । कथा : भगवान विष्णु ने सर्पशीर्ष हस्त का प्रयोग अपने वामन अवतार में देवगण की रक्षा करने हेतु जब बलि को बन्धक बनाया था तब किया था ।

मृगशीर्ष : भगवान महेश्वर, शिव, जाति–ऋषि, वर्ण–श्वेत । कथा : माता पार्वती ने भगवान शिव की प्राप्ति के लिए अपस्या की उस समय माता पार्वती ने अपने ललाट पर चन्दन से त्रिपुण्ड अपनी तीन उंगलीओं से बनाया । तभी से यह मृगशीर्ष हस्त का प्रचलन हुआ ।

कांगुल : देवता–पध्म, जाति–सिद्ध, वर्ण–सुवर्ण । कथा : क्षीरसागरमन्थन के समय उसमें से निकलें विष की गुटिका का बनाकर भगवान शिव ने पीया था तभी इसी हस्त का उपयोग किया था ।

अलपध्म् : देवता–सूर्य, जाति–गान्धर्व, वर्ण–धूलि । कथा : माखन चोरी करते समय भगवान श्रीकृष्ण द्वारा अलयध्यम! हस्त का प्रयोग किया गया था । चतुर : देवता–सूर्य, जाति–मिश्र, वर्ण–धूलि । कथा : अमृत लाने के लिए गरूड को कष्यप ऋषि ने जो

मार्गदर्शन दिया उसी समय चतुर हस्त का प्रयोग ऋषि द्वारा किया गया । तभी से यह हस्त प्रचलन में आया ।

भ्रमर : देवता–गरूड, जाति–मिश्र, वर्ण–धन (काला) । कथा : काष्यपऋषि ने अदिति जो देवों की माता है उनके कर्णकुन्डल बनाने के लिए इस हस्त का प्रयोग किया था ।

हंसास्य : देवता–ब्रह्मा, जाति–मिश्र, वर्ण–ष्वेत । कथा : इस हस्त का उपयोग ऋषिगण को तत्वविद्या का उपदेष देने के समय दक्षिणामूर्ति शिवने न्यग्रोधवृक्ष के नीचे बैठते समय किया था ।

हंसपक्ष : देवता–कामदेव, जाति–अप्सरा, वर्ण–नील । कथा : इस हस्त का प्रचलन तण्डु द्वारा ताण्डव नृत्य के प्रदर्षन के समय किया गया था ।

संन्दोष : देवता–वाल्मिकी, जाति–विद्याघर, वर्ण–श्वेत । कथा : भगवती सरस्वती द्वारा इस हस्त का प्रयोग हुआ था । प्राचीन मूर्ति शिल्पों में इस हस्त का प्रयोग ज्ञानमुद्रा के रूप में मिलता है । मुकुल : देवता–चन्द्र, जाति–संकीर्ण, वर्ण–श्वेत । कथा : जब हनुमानजी में सूर्य को अपने मुख में समा लिया था तब सूर्य को पकड़ने के लिए इस हस्तमुद्रा को धारण किया था ।

ऊर्णनाभ : देवता–इन्द्र, जाति–देव, वर्ण–श्वेत । कथा : नृसिंह भगवान ने हिरण्यकषियु के वध के समय इसी हस्त का उपयोग किया ।

ताम्रचूड : देवता–कूर्मावतार, जाति–क्षत्रिय, वर्ण–रक्त । कथा : तीनों वेद जब पूर्ण हो गए तब ब्रह्मा के समक्ष उपस्थित होकर प्रार्थना करने लगे तब यह हस्त का उपयोग किया गया था ।

संयुतहस्त मुद्रा : संयुत का मतलब है ''साथ में'' । दोनों हाथों को साथ में रखकर जो हस्तमुद्रा की जाती है उसे संयुत हस्त मुद्रा कहा जाता है । जिस तरह असंयुत हस्त वर्णमाला का एक अक्षर मानते हैं वैसे ही संयुत हस्त मुद्रा को संयुक्ताक्षर मानते हैं । नाटयशास्त्र में संयुक्तहस्त के तेरह प्रकार है । आचार्य अभिनवगुप्त ने कहा है कि भरतमुनि के द्वारा जो हस्तमुद्राऐं बताई गयी है इससे अतिरिक्त भी हस्त मुद्राओं की

कल्पना की जा सकती है और यही कारण है कि नंदिकेश्वर रचित अभिनय दर्पण में संयुत हस्त की संख्या तेरह 13 बताई गई है । अंजलि हस्त जो दोनों हाथों को जोड़कर जो मुद्रा बनती है उसे ''अंजलि'' कहते हैं । यह हस्त अभिवादन के लिए उपयोगी है । नमस्कार करने के लिए इस हस्त का प्रयोग करते हैं । अंजलि हस्त को तीन स्थान पर रखकर अभिवादन किया जाता है । वक्षःस्थल मुख और मस्तक । देवता का अभिवादन करने के लिए अंजलि हस्त को शिर के पास नमस्कार किया जाता है, गुरूजन का अभिवादन करने के लिए अंजलि हस्त को मुख के पास रखते हैं और मित्रों और प्रेक्षक के अभिवादन करने के लिए वक्षस्थल के पास किया जाता है । कपोत ,कर्कट , स्वस्तिक , कटकावर्धमान ,उत्सांग , निषेध, डोला , पुष्पकट, मकर , गजदन्त, अवहित्थ , वर्धमान । आचार्य अभिनव गुप्त ने कहा है कि भरतमुनि द्वारा बताये गए हस्त के अतिरिक्त भी हस्तमुद्राओं की कल्पना की जा सकती है । नाट्यशास्त्र में जो संयुत हस्त की संख्या है उससे ज्यादा अभिनयदर्पण में दी गयी है ।

हस्तमुद्राओं की क्रियाएँ : हस्त के कार्य मुद्राओं से अधिक होते हैं जो इस प्रकार है।

उत्कर्षण : उपर की ओर उछलना , ि
वकर्षण : खींचना ,
व्याकर्षण : बहार की ओर छिटकना ,
परिग्रह : ग्रहण करना **,**
निग्रह : विनाश करना ,
आह्वान : बुलाना या संकेत करना ,
तोदन : तोड़न करना ,
संष्लेष : मिलना
वियोग : हटाना या हटना ,
रक्षण : रक्षा करना,
मोक्षण : फेंकना ,
विक्षेप : फेंकना या त्याग करना ,
धूनन : कंपन करना या हिलाना ,
विसर्ग : सम्मान से अर्पण करना या त्यागना ,
छेदन : तोड़ना ,
भेदन : काटना ,
मोटन : संकोच करना ,
ताडन : पीटना ।

इन हस्तो द्वारा अभिनय भावों को अच्छी तरह से दिखा सकते हैं।

हस्तप्रचार : हस्तप्रचार नाट्य के तत्वों के सिद्धांत अनुसार तीन प्रकार के किये जाते हैं । उत्तान जो उपर की ओर मुंह करके किया जाता है । पार्श्व जहाँ दांयी या बांयी ओर मुंह करके किया जाता हो । अद्योमुख जहाँ नीचे की ओर मुंह करके किया जाए । नाटयशास्त्र में पात्रों के अनुसार हस्तों के स्थान का उल्लेख है जिसमें उत्तम पात्रों के हस्त को बताने के लिए ललाट प्रदेश के पास, मध्यम पात्रों को वक्षःस्थल के पास,

मध्यम पात्रों को वक्षःस्थल के पाल और अधम पात्रों को वक्षःस्थल के नीचे शरीर के भग के पास हस्त को रखते हैं ।

नृत्तहस्त : हस्ताभिनय के कई सारे आकर्षक रूप है और उसकी शोभा बढ़ाने के अलग–अलग अवस्थाओं में की जाती है तो उन हस्तों को ''नृत्तहस्त'' कहा जाता है । इन के द्वारा रचना का भाव या अर्थ प्रदर्शित नहीं होता लेकिन यह अंगभंग या लावण्य दिखाने के लिए प्रयोग में लिए जाते हैं । इसी कारण नाटयाचार्य ''नृत्तहस्तो'' की शोभाधायिता के कारण नाट्य प्रयोग का अलंकरण मानते हैं । नृत्तहस्त को समतोलपन के सिद्धांत पर बनाया गया है । इसी कारण नृत्तहस्त हाथ पैर और शरीर को समतोलपन द्वारा सौन्दर्य में वृद्धि उत्पन्न करते हैं और उसके द्वारा नृत्य प्रदर्शन शोभायमान हो उठता है । इसी कारण नृत्तहस्त नृत्य के अलंकार माने गए हैं । संयुत और असंयुत हस्त मुद्राओं से नृत्तहस्त हाथ के चालन से बना है इसी कारण से संयुत्त और असंयुत्त हस्तो का रेखांकन है पर नृत्तहस्तो का नहीं है । नृत्तहस्तो का संचालन शरीर की क्रिया और पैरों की क्रिया जैसे की पैरों को उठाकर रखना। इनके साथ की जाती है । यह पांच प्रकार से संचालित किए जाते हैं । उपर , नीचे, दाहिने, बांये और सामने । नृत्तहस्तों की रचना संयुत तथा असंयुत हस्तों के द्वारा होती है और मिश्र भी होती है । नृत्तहस्तो की संख्या के बारे में जानेंगे तो नाटयशास्त्र में नृत्तहस्तो की संख्या तीस बताई गयी है । जो इस प्रकार है ।

चतुरस्त्र : कटकामरण मुद्रा में दोनों हाथों को रखकर छातीसे आठ अंगुली दूर और सामने रखकर दोनों कंधों को तथा कोहनी को समान ऊँचाई पर रखकर ''चतुरस्त्र'' हस्त होता है ।

उद्‌वृत्त : इस हस्त का दूसरा ''नाम तालवृन्तक'' है । इसमें दोनों हाथों में हंसपक्ष हस्त रखकर पंखे के समान हिलाते है ।

तलमुख : हंसपक्ष हस्तो को चतुरस्त्र दशा में तिरछे रखकर एक दूसरे के सामने रखा जाता है ।

स्वस्तिक : इस हस्त में तलमुख हस्त मुद्रा को कलाई से स्वस्तिक में किया जाता है ।

विप्रकीर्ण : विप्रकीर्ण यानि हटा लेना । स्वस्तिक के प्रदर्शन के बाद इस नृतहस्त को हटाने को विप्रकीर्ण हस्त कहा जाता है।

अराल कटकामुख : इस नृतहस्त का दूसरा नाम है ''अरालकटका'' जिसमें दोनों हाथों से अलपल्लव हस्त उपर की हथेली से पद्मकोष हस्त में किया जाता है।

आविध्दवक्र : बायीं, कंधा और कोहनी के कोनों के विपरीत करते हुए तिरछी गति से हाथों को स्पर्श करके अराल मुद्रा की हथेलियों को कंपित करके उपर तथा नीचे करते हुए बदलना ।

सूचीमुख : दोनों हाथों से सर्पशिर्ष हस्त करके अपने अंगूठे के साथ तिरछें रखकर हथेली को मध्यभाग को स्पर्श करके करना ।

रचित : दोनों हाथों से हंसपक्ष हस्त करके तेजी से घुमाते हैं और हथेली का मुंह उपर की और फैला देते हैं ।

अर्धरेचित : चतुरस्त्र हस्त को बांये हाथ में और रेचित दाहिने हाथ से करना।

उत्तानवंचित : दोनों हाथों से त्रिपताक हस्त करके उसे थोड़ा तिरछा रखते हैं और झुकाते हैं तथा कन्धों को और कोहनियों को हिलाते हैं ।

पल्लव : हाथों को पताक हस्त में रखकर कन्धों के बराबर रखकर हस्तों को मिलाते हैं ।

नितम्ब : पताक हस्त दोनों हाथों में रखकर कन्धें से उपर निकालकर ले जाया जाता है ।

केशबन्ध : पताक हस्त को शिखा पर या कोष के पास घूमाकर दोनों बाजुओं में सीधा रखते हैं ।

लता : दोनों हाथों को फैलाकर तिरछें करना और उसके बाद बाजुओं को फैलाते हैं ।

करिहस्त : लता हस्ते करने के बाद उसे उपर की और करके एक से दूसरी बाजु झुलाना और एक हाथ में त्रिपताक मुद्रा से कर्ण के पास रखते हैं ।

पक्षवंचितक : दोनों हाथों से त्रिपताक हस्त करके एक हाथ को कटि प्रदेश के पास और दूसरे हाथ को सिर के पास रखते हैं ।

पक्ष प्रद्योतक : इसमें पक्षवंचितक हस्त को उल्आ कर दे ंतो पक्ष प्रद्योतक हस्त बन जाता है ।

गरूड पक्ष : यह हस्त पक्षवंचित हस्त को औंधी (उल्टी) हथेली करते हुए किया जाता है ।

दण्डपक्ष : दोनों हाथें से हंसपक्ष हस्त करते हुए उसे उल्टे और सीधे घुमाया जाता है और कोहनी से कंधे तक बाहु फैलाकर रखे जाते हैं ।

ऊर्ध्वमण्डली : इस हस्त में दण्डपक्ष हस्त को गोलाकार में ऊपर की ओर घुमाया जाता है ।

पार्ष्वमण्डली : उर्ध्वमण्डली हस्त को एक बाजु रखते हैं ।

उरोमण्डली : एक हस्तकों उपर की ओर उठाकर यानि उद्वेषित और दूसरे हस्त को अपवेष्टित यानि नीचे की और झुकाते हुए उसे वक्षःस्थल के पास घुमाते हैं ।

उरः पार्ष्वमण्डलः अभपल्लव और अराल हस्त करते हुए उसे आधा घुमाकर एक हस्त को बाजू में और दूसरे को उपर रखते हैं ।

मुष्टिकस्वस्तिक : इसमें दोनों हाथों को खटकामुख हस्त करके कलाई से झुकाते हुए गोल घुमाते हुए उद्वेषित करण में रखते हैं ।

नलिनीपद्मकोष : दोनों हाथों में पद्मकोष हस्तो को रखकर उसे आधे सीधे करके पलटाते है या घुमाव देते हैं ।

अलयल्लव : हाथों को उद्वेष्टित करण में उपर की और घुमाव करके रखते हैं ।

उत्वण : अलयल्लव हस्तों को कन्धे के बराबर रखकर उपर की ओर घुमाया जाता है।

ललित : दोनों हाथों से पल्लव हस्त करके सिर पर घुमाया जाता है ।

वलित : दोनों हाथों में लताहस्त करके कलाई के पास स्वस्तिक करते हैं ।

नृत हस्तो का प्रयोग करणों के निर्माण में :

भरतमुनि के अनुसार कहा गया है की नृत हस्तो का प्रयोग करणों के निर्माण के लिए विशेषतापूर्वक करना चाहिए । करणों के प्रदर्शन में हस्तों की क्रिया को इस प्रकरण में बताया गया है जो हस्तकरणों को बताया है वह चार प्रकार के हैं जो इस प्रकार है ।

आवेष्टित : सभी उंगलियों में सौप्रथम तर्जनी अंगुली से प्रारम्भ होकर सभी अंगुलियां वेष्टित होकर पूर्ण हाथ के गोलाकार घुमने के करण को ''आवेष्टित'' कहा जाता है ।

उद्वेष्टित : तर्जनी अंगुली से प्रारंभ होकर एक के बाद एक सभी अंगुलियों के द्वारा संपूर्ण हस्त को बाहरी भाग से आवेष्टि करने के बाद फिर हाथ गोल घुमाव लेता है तो उसे ''उद्वेष्टित'' करण से जाना जाता है ।

व्यावर्तित : सभी अंगुलियों में से कनिष्ट का उंगली से शुरू होकर सभी उंगलियों को एक के एक भीतरी भाग से आवेष्टित किया गया हो और संपूर्ण हाथ गोलाकार स्थिति में घुमाव लेता है तो यह करण 'व्यावर्तित' के नाम से जाना जाता है ।

परिवर्तित : यदि कनिष्ठिका उंगली से शुरूआत होकर सभी उंगलियां बाहरी भाग से आवेष्टित कर हस्त को गोल घुमाए तो यह करण परिवर्तित कहलाता है । इन हस्तो को जब नृत तथा नाटय अभिनय की दशा में उनकी विभिन्न क्रियाओं में दर्शाया जाए तो उन्हें नेत्र, मुख तथा भौंहे के अनुसार और करणों के द्वारा अनुसृत करके रखा जाता है ।

करणों में स्थित बाहुओं के दस प्रकारों का ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है। तिर्यक, ऊर्ध्वसंस्य, अधोमुख, अश्चित, अपोवेद्ध, मंडलगति, स्वस्तिक , पुष्ठानुसारी ,उद्वेषित तथा प्रसारित ।

2.4.6 वक्षस्थल :

वक्षस्थल के मुख्य पांच प्रकार है ।

आभुग्न : यदि वक्षस्थल और दोनों कन्धे नीचे की और झुके हुए हों तो वह आभुग्न वक्षस्थल के नाम से जाना जाता है ।

निभुग्न : यदि पीठ झुकी हुई हो और वक्षस्थल दृढ तथा कन्धे उठे हुए हो तो उसे निर्भग्न वक्षस्थल से जाना जाता है ।

प्रकम्पित : वक्षःस्थल को सतत् फुलाने और सिकुड़ने की क्रिया को प्रकम्पित वक्ष स्थल कहा जाता है । इसका उपयोग हास्य, रूदन, भ्रम, भय, श्वास, कास, द्विक्का तथा दुःख की दशा में स्थिति के अनुसार किया जाता है ।

उद्धाहित : उठे हुए वक्षस्थल को उद्धाहित वक्षस्थल कहा जाता है । इसे ऊँची वस्तु का अवलोकन तथा लंबा उच्छवास तथा उबासी (जंभाई) लेने की अवस्था में प्रयोग किया जाता है।

सम : सम वक्ष स्थल में सभी अवयव समान तथा सौष्ठव युक्त होते हैं । इसका प्रयोग स्वाभाविक दशा के अभिनय में किया जाता है ।

2.4.7 पार्श्व :

पार्श्व के पांच प्रकार है जो इस प्रकार बताए गए हैं ।

नत : कटी तथा उसी और की पार्श्व बाजु थोड़ी झुकी हुई और कन्धा नमता हुआ हो तो उसे ''नत'' पार्श्व से जाना जाता है ।

समुन्नत : कटि, पार्ष्व, भुजा और कन्धा तथा नत पार्श्व की दूसरी बाजू उठी हुई रहें तो उसे समुन्नत कहते हैं ।

प्रसारित : 'प्रसारित' पार्श्व में कोख की दोनों दिशा को अपनी–अपनी दिशा में फैलाया जाता है । इस क्रिया को प्रसारित पार्श्व कहते हैं ।

अपसृत : विवर्तिन पार्श्व की स्थिति से पार्श्व भाग पुनः अपनी मूल स्थिति में आ जाएं तो उसे 'अपसृत' पार्श्व से जाना जाता है । किसी व्यक्ति के पास आने में 'नत' की पीछे खिसकने में समुन्नत की अतिहर्ष में 'प्रसारित' की पीछे घूमने में 'विवर्तित' की तथा लौटने में 'अपसृत' का प्रयोग किया जाता है ।

2.4.8 उदर :

उदर के तीन प्रकार है । क्षाम , खल्व और, पूर्ण इनमें , क्षाम का अर्थ होता है दुबला या खींचा हुआ उदर, खल्व का अर्थ होता है झुका हुआ उदर, और भरे हुए पेट को पूर्ण कहा जाता है ।

क्षाम : क्षाम का प्रयोग हास्य, रूदन, निश्वास तथा उबासी (जंभाई) लेने में होता है । क्षाम के इस प्रयोग में उदर दुबला या खींचा हुआ होता है ।

खल्व : खल्व का प्रयोग बीमारी, तपस्या तथा भूख में किया जाता है। सामान्य रूप से खल्व में उदर की स्थिति झुकी हुई होती है ।

पूर्ण : उच्छवास, स्थूलता व्याधि तथा अतिशय भोजन करना आदि पूर्ण उदर के लक्षण है ।

2.4.9 कटी :

कटी के पांच प्रकार है जिनका उपयोग सामान्य रूप से नृत्य और नाट्य में किया जाता है । 'छिन्ना' मध्य भाग से लटकती हुई रहने वाली कटि को छिन्न कटि कहा जाता है

। सामने की और घुमाने के बार फीस सामने की और उठाकर रखने और लौटाने पर उसे 'निवृता' कटि कहते हैं । चारो तरफ घुमाने पर यह 'रेचिता' कटि कहलाती है। द्रुतगति से आडी तिरछी आने जाने वाली कटि को 'प्रकम्पिता' कटि कहलाती है । ब गल और नितंब भाग से उपर की और धीरे–धीरे उठाने पर 'उद्धाहिता' कटि कहलाती है । छिन्ना की योजना व्यायाम भ्रान्ति तथा पीछे घुमकर देखने में करनी चाहिए । गोल घुमने में 'निवृता' की योजना की जाती है । भ्रमण आदि सामान्य क्रियाओं से 'रेचिता' की योजना की जाती है । कूबडे, बौने तथा नीव प्रकृति के पुरूषों की चाल में 'प्रकम्पिता' तथा स्थूल पुरूष और स्त्रियों की लीला पूर्ण गति में 'उद्धाहिता' कटि की योजना करनी चाहिए ।

2.4.10 उरू अर्थात् पिंडलिया

उरू अर्थात् पिंडलिया की पांच अवस्थाएँ होती है । कम्पन, चलन, स्तम्भन, उद्धर्तन तथा , विवर्तन । कम्पन में बार–बार पैर की एड़ी के अग्रभाग को उपर तथा नीचे ले जाने को 'कम्पन' कहा जाता है । पैर घुटने के अंदर के भाग में रहे और पिंडलिया गतिषील हो तो 'वलित' स्थिर गति रखना 'स्तम्भन' घुटनो को सिकुडना तथा हिलाना 'उद्धर्तन' तथा पैर की एडी को अंदर की और सिकुड़ना 'विवर्तन' कहलाता है। 'अधमपात्रों की गति तथा भय की दशा में 'कम्पन' की स्त्री को यथेच्छ गति में 'वलन' की भय और विषाद की अवस्था में स्तम्भन की व्यायाम तथा ताण्डव नृत्य में 'उद्धर्तन' की तथा भ्रान्त और घ ूमने की दशा में 'निवर्तन' की योजना करनी चाहिए । इसके अतिरिक्त उरू की अन्य क्रिया तथा अवस्था प्रयोक्ता जन कार्य के अनुसार लौकिक स्थिति से ग्रहण किया जाता है । इस प्रकार 'उरू' का वर्णन किया जाता है ।

2.4.11 जंघा :

जंघा के पांच प्रकार होते हैं जो इस प्रकार है । आवर्तित, नत, क्षिप्त, उद्धाहित और परिवृत्त । 'आवर्तित' बायां पेर सीधी ओर तथा सीधा पैर बायीं ओर घूमे तो उसे आवर्तित के नाम से जाना जाता है । 'नत' जंघा को सिकुड़ाने या झुकाने की क्रिया को 'नत' कहा जाता है । 'क्षिप्त' जंघा को झटके से फेंकने की क्रिया को 'क्षिप्त' कहा जाता है । 'उद्धाहित' जंघा को उपर की ओर उठाने को उद्धाहित कहा जाता है । 'परिवृत्त'

जंघा को पीछे की ओर मोड़ने को 'परिवृत्त' कहा जाता है । विदूषक की गति में आवर्तित की योजना की जाती है । खड़े होने तथा आसन ग्रहण करने में 'नत' की योजना की जाती है । 'क्षिप्त' की योजना व्यायाम तथा ताण्डवनृत्य के दौरान की जाती है । वक्र गति आदि में 'उद्धाहित' की तथा ताण्डव आदि के प्रस्तुतीकरण में 'परिवृत्त' जंघा की योजना करनी चाहिए । प्रस्तुतीकरण में 'परिवृत्त' जंघा की योजना करनी चाहिए ।

2.4.12 पादकर्म :

पादकर्म के पांच भेद है । उद्धधट्टित, सम् ,अग्रतक संचर, अंचित तथा कुंचित । **उद्धधट्टित** : पंजे के बल खड़े होकर एडी से भूमि का स्पर्श करने पर 'उद्धट्टित पाद' कहा जाता है । इसे एक या अनेक बार होने वाली द्रुत और मध्यम गति में संयोजित किया जाता है ।

सम् : सामान्य रूप से समतल भूमि पर रखे हुए पैर को 'समपाद' कहा जाता है । इसका उपयोग अभिनय में होता है । अलग–अलग प्रकार के करणो की स्थिति को प्रदर्शित करने में 'समपाद' का प्रयोग किया जाता है । पैरो का पंजा दूसरे पैर के अंदर की ओर चला जाए और अंगूठा एक बाजु बाहर टिका रहे तो उसे 'त्र्यश्चपाद' कहा जाता है । समपाद स्थान तथा अश्वक्रान्तस्थान के प्रदर्शन करने के उपरान्त विकलवादि भावों की अभिव्यक्ति के लिए 'त्र्यश्चपाद' का विधिवत् प्रयोग किया जाता है ।

अग्रतलसंचर : एडी उठी हुई, अंगूठा आगे की और फैला हुआ और उंगलियां झुकी हो तो 'अग्रतल संचर' पाद कहा जाता है । तोड़ना, स्थित होना, पीटना, पृथ्वी को ताड़ना करना, भ्रमण, किसी वस्तु का फेंकना, अनेक गतियों की दशा में तथा एडी के बल आने में 'अग्रलसंचर' पाद का प्रयोग किया जाता है ।

अंचित : एडी भूमि पर टिकी हो और पंजा उपर उठा हुआ हो तथा उंगलियां झुकी हुई हो तो उसे 'अंचित पाद' कहते हैं । अंचित पाद का प्रयोग पंजो के बल पर खडे होकर

चलने, किसी ओर घूमने और लौटने, पैर से भ्रमरीचारी के प्रदर्शन में किया जाता है ।

कुंचित : यदि एडी उपर उठी हुई, उंगलियां सिकुड़ी हुई तथा पैर का आधा भाग नमा हुआ रहे तो 'कुंचित पाद' कहा जाता है । कुंचित का प्रयोग सीधी और घुमने, लौटने और अतिक्रान्तावारी के प्रदर्शन में किया जाता है । जिसमें दाहिने पैर की एडी उठी हुई हो और पंजा अंगूठे के बल पर टिका हुआ तथा बांया पैर स्वाभाविक दिशा में खड़ा रखा जाए तो 'सूची' पाद कहलाता है । पैरो की गति के प्रदर्शन करने में जंघा तथा उरू की गतियां भी सम्मिलित होती है इसलिए पाद, जंघा तथा उरू की गतियों को एक साथ ही प्रयुक्त करना चाहिए । पैर जिस दिशा में घूमता है जंघा भी उसी दिशा में जाती है इसी कारण इन दोनों की समान गति के कारण पदचारी बनती है ।

2.4.13 चारी :

चारी यानी पैर, जंघा, उरू तथा कटी आदि अंगो की मदद से एक साथ चलने की रीत को चारी कहते हैं । नाटयशास्त्र में भौमीचारी तथा आकाशीचारी के 32 प्रकार बतलाए गए हैं। चारी सभी अंगो को परस्पर संबद्ध करती है; इसलिये 'चारी' को व्यायाम भी कहा जाता है । एक पैर के द्वारा चलने की रीत को 'चारी' कहा जाता है और दोनों पैरो से चलने की विधी को 'करण' कहा जाता है । तीन करणों के योग से खंड बनता है और तीन या चार खंड के मिलने पर एक 'मण्डल' बनता है । चारी से ही नृत्य होता है । चारी के माध्यम से ही शरीर की हिलचाल होती है । नृत्य में चारी का प्रयोग शस्त्रों का फेंकना, युद्ध करना आदि जगहों पर होता है । नाट्य के रूप में जो भी क्रियाएं होती है, वह सब चारी में ही समाविष्ट होती है। क्योंकि नाट्य का कोई भी विभाग चारी के बिना संभव नहीं है ।

भौमीचारी :

भौमीचारी के 16 सोलह प्रकार है ।

समपादा : दोनों पैर के पंजो को एकसाथ रखकर तथा नखों को बराबर मिलाते हुए अपने स्थान पर स्थित रहने को समपाद कहा जाता है ।

स्थितवर्ता : यदि भूमि पर रगडते हुए एक पाद को उपर उठाकर स्वस्तिक दिशा बनाते हुए दूसरे पैर को अपने पास खींचे तथा दोनों के पृथक होने के पश्चात् यही गति पुनः आवृत्त की जाए तो 'स्थितावर्ता' चारी होती है ।

शकटास्या : शरीर को सीधा रखकर एक पाद को आगे की दिशा में सामने की ओर रखे तथा छाती को 'उद्धाहित' स्थिति में रखा जा तो उसे शकटास्या चारी कहते हैं ।

अध्यर्धिका : बांए पैर की एडी के पिछले भाग पर दाहिना पैर रखकर फिर उसे पीछे हटाया जाए तो उसे ' अध्यर्धिका' चारी कहा जाता है ।

चाषगति : दाहिने पैर को आगे ले जाकर फिर पीछे की और रख दिया जाए और उसी समय बांया पैर पीछे की और रखकर पुनः आगे बढाकर रख दे तो 'चाषगति' चारी से जाना जाता है।

विच्चवा : समपाद चारी के दोनों पैरो को अलग कर पंजो को पृथ्वी पर पटकें तो उसे 'विच्चवा' कहा जाता है ।

एलकांक्रीडता : यदि दोनों चरण उछलकर पृथ्वी पर क्रमशः गिरता रहे तो 'एलकांक्रीडता' चारी कहा जाता है ।

बद्धा : दोनों जंघाओं को 'स्वस्तिक' में रखकर पिंडलियों को धीरे–धीरे हिलाने पर 'बद्धा' चारी कहा जाता है ।

उरूदवृत्ता : यदि पंजा आगे रख दिया जाए और एक पिंडली थोडी नमाकर जंघा को उपर उठा लें तो उसे 'उरूदवृत्ता' चारी कहते हैं ।

अड्डिता : यदि एक अग्रतल संचर पैर को आगे या पीछे की ओर पृथ्वी को रगडता हुआ रखा जाए तो 'अड्डिता' चारी कहा जाता है ।

उत्स्पन्दिता : रेचक के अनुसार दोनों पैरो को क्रमशः एक दूसरे के पीछे घुमाया जाए तो उसे 'उत्स्पन्दिता' चारी कहा जाता है ।

जनिता : एक मुष्टि हस्त छाती पर तथा दूसरा हाथ गोल चक्कर लगाता है और पैर अग्रतलसंचर दिशा में हो तो उसे 'जनिता' चारी कहते हैं ।

स्पन्दिता : एक पैर को दूसरे पैर को दूसरे पैर से पांच ताल के अन्तर से सामने रखी जाए तो 'स्पन्दिता' चारी कहा जाता है ।

समोत्तसारीत मतल्ली : यदि पादों से पीछे की ओर गोल चक्कर लगाया जाए तो उसे 'समोत्तसारीत मतल्ली' कहते हैं ।

स्पन्दिता : एक पैर को दूसरे पैर से पांच ताल के अन्तर से सामने रखी जाए तो 'स्पन्दिता' चारी कही जाती है ।

अवस्पन्दिता : यदि स्पन्दिता चारी के विपरीत पैर को पहले पैर के सामने पांच ताल के अन्तर से रखा जाए तो **'अवस्पन्दिता**' चारी कहलाती है ।

समोत्सारित मतल्ली : तल संचर पादो से पीछे की ओर गोल चक्कर लगाया जाए तो उसे 'समोत्सारित मतल्ली' चारी कहते हैं ।

मतल्ली : यदि एक गोलाकार चक्कर लगाकर पीछे की ओर जाया जाए तथा हस्त उद्वेषित तथा पुनः अपविद्ध स्थिति में रखें तो 'मतल्ली' चारी होती है । इन सभी क्रियाओं को भौमीचारी कहते हैं । इनका प्रयोग बाहुयुद्ध तथा करणों के प्रदर्शन में किया जाता है।

आकाशीचारी :

आकाशीचारी के लक्षण इस प्रकार है ।

अतिक्रान्ता : दोनों पिंडलिओं के द्वारा वलन क्रिया को प्रदर्शित कर फिर एक कुञ्जित पैर को उठाकर एक बाजु में पटके तो 'अपक्रान्ता' चारी कहा जाता है ।

अपक्रान्ता : एक 'कुश्चित' पैर को उपर उठाकर सामने फैलाए तथा उपर उठाकर नीचे पटके तो 'अतिक्रान्ता' चारी कहा जाता है ।

पार्ष्वक्रान्ता : पैरों को 'कुथित' दशा में उपर उठाकर जंघा से उपर ले जाए तथा फिर उठे हुए पैर को एक बाजु की और ले जाए तो 'पार्ष्वक्रान्ता' चारी होती है ।

उर्ध्वजानु : कुंचित पैर को उपर उठाकर जंघा को छाती के समान उंचा उठाकर रखा जाए और दूसरी जानु स्तब्ध रखे तथा फिर इसी क्रम से दूसरे पैर को कुश्चित दशा में उपर उठाकर और पहले को स्थिर रखे तो 'उर्ध्वजानु' चारी कही जाती है ।

सूची : कुश्चित पैर को जंघा के उपर ले जाकर फैलाए और फिर इसके पंजे के आगे वाले भाग को जमीन पर पटके तो उसे 'सूची' चारी कहते हैं ।

नूपुरपादिका : अंचित पैर को उपर उठाए और दूसरे पैर के पीछे रखें या अगतलसंचर स्थिति वाले पैर को पृथ्वी पर पटके तो उसे 'नूपुरपादिका' चारी कहा जाता है ।

डोलापाद : कुंचित पैर को उपर उठाकर एक दिशा से दूसरी दिशा में हिलाया जाए तथा अंचित दिशा में रखकर पृथ्वी पर पटके तो डोलापाद चारी कहते हैं ।

आक्षिप्ता : कुश्चित पैर को उपर उठाकर अंचित दिशा में पृथ्वी पर रख दें और जंघाओ को स्वस्तिक किया जाए तो उसे 'अक्षिप्ता' चारी कहा जाता है ।

आविद्धा : जंघाओं से स्वस्तिक बनाकर एक पैर आगे की दिशा में फैलाए तब 'कुच्चित' रखे तथा उसे 'अंचित' बनाकर पृथ्वी पर पटके तो उसे 'आविद्धा' चारी कहते हैं ।

उदवृत्ता : आविद्ध चारी की दिशा में लपेट लें तथा फिर दूसरे पैर को इसी प्रकार बदल कर रखें और उपर उठाकर पृथ्वी पर पटके तो 'उद्वृत्ता' चारी होती है ।

अलाता : एक पैर को पीछे की ओर फैलाकर और घुमाकर इसे अन्दर रखते हुए दूसरे पैर के पंजे के पास पटके तो उसे 'अलाता' चारी से जाना जाता है ।

भुजंगत्रासिता : कुश्चित पैर को उपर उठाकर पिंडली को गोलाकार घुमाए और उसके साथ कटि तथा जंघा को भी घुमाए तो उसे 'भुजंगत्रासिता' कहते हैं ।

हरिणप्लुता : अतिक्रान्तचारि में एक उछाल मारकर पृथ्वी पर पैर टिका दे तथा जंघा को अप्यित पैर युक्त करते हुए अक्षिप्त दशा में पैर को नीचे पटके तो 'हरिणप्लुता' चारी

कहा जाता है ।

दण्डपादा : नूपुर चारी को प्रदर्शित कर एक पैर को फैलाकर पीछे लौटाया जाए तो दण्डपादा चारी कहलाती है ।

भ्रमरी : अतिक्रान्ता चारी को प्रदर्शित करते हुए एक पैर को उपर उठाया जाए तथा पीठ को घुमाया जाए और फिर दूसरे पैर को उसके नीचे भाग में घुमाव दे तो उसे भ्रमरी चारी कहा जाता है ।

ये अंगो के ललित संचालन द्वारा होने वाली आकाशिकी चारी है । इनका प्रयोग धनुष, वज्र असि तथा अन्य शस्त्रों के चलाने में होता है । इन सभी प्रदर्शनो के अवसर पर पैरों की गति के अनुसार हस्तो को आगे जाने वाले, पीछे जाने वाले तथा साथ–साथ रखना चाहिए । जिधर पैर जाए वहीं हाथ भी बढे तथा जिधर हाथ जाए वहीं शेष शरीर भी घूमे । पैर को एक डग भरने के उपरान्त उपांगों की योजना अभिनय में करनी चाहिए । किसी भी चारी के प्रदर्शन के पश्चात् जैसे पैर भूमि पर रखा जाता है वैसे ही हस्त को अपने इष्ट प्रदर्शन के बाद गोल घुमाव लेकर कटि पर रखना चाहिए ।

2.4.14 स्थान :

स्थान छः हैं जो मनुष्यों के खडे होने की अवस्था को निर्देष करता हैं ।

वैष्णव : दोनों पैर अढाई ताल के अन्तर से रखे जाएं । इन पैरों में एक पैर खड़ा और दूसरा पैर टेढा और बाजू में स्थित रखें । जंघा थोडी झुकी हुई हो और शरीर के सभी अवयव 'सौष्ठव' युक्त हो तो उसे 'वैष्णवस्थान' कहा जाता है । इस स्थान के माध्यम से उत्तम तथा मध्यम प्रकृति के पात्रों का उनके विभिन्न कार्यो से सम्बद्ध वार्तालाप प्रदर्षित किया जाता है । इसका प्रयोग धनुष धारण करने में, धैर्य दान, लीलायुक्त शारीरिक गति चक्र फेंकने में तथा क्रोध आदि में की जाती है । इसके माध्यम से विपरित दिशाओं में प्रदर्शन के द्वारा प्रणय, क्रोध, शंका, असूया, उग्रता, चिन्ता, मति, स्मृति, दैन्य, चपलता, प्रण्योपालम्भ, प्रणयोद्वेग तथा गर्व जैसे संचारी भाव अभीष्ट को प्रधानता बतलाई जा सकती है ।

समपाद स्थान दोनों पैर एक ताल का अन्तर रखकर अपनी मुद्रा में समान स्थित हों तथा स्वाभाविक सौष्ठव लिए हुए हो तो 'समपाद स्थान' होता है । इसके देवता ब्रह्माजी है । इस स्थिति के प्रयोग से ब्राह्मणों के मंगल आशिष ग्रहण, दिव्य पुरूष तथा विमान में स्थित पुरूष, शैवसन्यासी अर्थात् लिंगस्य तथा व्रतस्य पुरूष को प्रदर्षित किया जा सकता है ।

वैशाख स्थान : दोनों पैरों को साढे तीन ताल के अन्तर से स्तब्ध रखें और पैर तिरछे तथा एक–दूसरे के सामने रखें तो उसे वैशाख स्थान कहा जाता है । इसका प्रयोग व्यायाम, अखारोहण, बहिर्गमन, बड़े आकार वाले पक्षियों का निरूपण, धनुष का खींचना या अभ्यास तथा पाद रेचकों का प्रदर्शन करने में किया जाता है । इसके देवता कार्तिकेय है ।

मण्डलस्थान : मण्डलस्थान की स्थिति में पैर को चारताल के अन्तर से रखे जाते हैं । दोनों पैरो को एक–दूसरे के सम्मुख समान अवस्था में रखे जाते हैं और घुटनो को तथा कटि को अपने स्वाभाविक स्वरूप में रखा जाता है । इसका उपयोग हाथी पर सवार होने, धनुष तथा वज्र आदि शस्त्रों के चलाने, स्थूल पक्षियों के दिखावे के लिए किया जाता है । मण्डल स्थान की स्थिति में दाहिने पैर को उपर की और फैलाया जाए तो उसे 'आलीढ स्थान' कहा जाता है । इसके अधिदेवता श्वद्र देव है । 'अलीढ' नामक इस स्थान द्वारा वीर तथा रौद्र रस के सभी कार्य, क्रोध में अनुष्ठित प्रश्र तथा प्रत्युत्तर की वृद्धि, मल्लो के रोषपूर्ण भाषण, शत्रुओं पर हमला, शत्रुओ का प्रदर्शन करना तथा शस्त्रों का प्रहार करना या शस्त्र फैंकना आदि बताया जा सकता है ।

प्रत्चालीढ स्थान : प्रत्चालीढ स्थान अर्थात् आलिढ स्थान से विपरित अर्थात् दाहिने पैर को सिकुडाकर उस पैर से बांए पैर का पांच ताल के अन्तर से उपर फैलना होता है । इसके अधिदेवता रूद्र है । इस स्थान का प्रयोग आलीढ स्थान से चलाए जाने वाले शस्त्रों को प्रत्चालीढ स्थान में चलाने के लिए होता है । अभिनेताओं द्वारा अनेक शस्त्रों को चलाना भी इसी स्थान के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है । हमें चार न्याय का प्रयोग शस्त्रों के प्रयोग में करना चाहिए । भारत न्याय में शस्त्रों को कटिप्रदेश से सात्वत में पैरों के बराबर से वार्शगण्य में वक्षस्थल से तथा कौशिक में मस्तक पर चलाया जा

सकता है । विभिन्न चारी द्वारा निर्मित इन न्यायों से अनेक शस्त्रों को चलाने के अवसर पर अभिनेताओं द्वारा रंगमंच पर विशिष्ट गतियों में चला जाता है । रंगमंच पर युद्ध को उन अंगहारों सहित नियमित करते हैं इसलिए इसे न्याय कहा जाता है ।

भारत : बायें हाथ में ढाल को सामने रखते हुए तथा दाहिने हाथ में तलवार लेकर अभिनेता रंगमंच पर चले । फिर वह सामने की ओर हाथ को पूरा फैला दे और पीछे की ओर खींच ले और तब ढाल को पीछे आगे तथा दांये–बांये घुमाए फिर अपने मस्तक के चारों ओर तलवार या शस्त्र को घुमाए और उसे कपोल प्रदेश के समीप गोल घुमावे और फिर हाथ में तलवार तथा ढाल लेकर ललित क्रम से घुमाते हुए मस्तक के चारों और एक चक्कर लगा लें । शस्त्रों के चलाने में 'भारत' न्याय के प्रदर्शन के समय इसी विधि से मंच पर चलना चाहिए ।

सात्वत : सात्वत न्याय में भी शस्त्र और ढाल की चाल वही होती है सिर्फ शस्त्रों को पीछे से घुमाया जाता है ।

वर्षगण्य : इस वर्षगण्य न्याय में सात्वत न्याय के क्रमानुसार ही गति रहती है । इस न्याय में तलवार तथा ढाल को एक साथ ही घुमाया जाता है । इन शस्त्रों को मस्तक का एक चक्कर लगाते हुए घुमाते हैं और फिर उन शस्त्रों को मस्तक या छात्री के सामने वाले स्थान पर घुमाया जाता है ।

कैषिक : कैषिक न्याय में भारत न्याय जैसी प्रक्रिया की जाती है । भारत न्याय के समान ही शस्त्र को छाती और कन्धों के पास घुमाया जाता है । इसमें केवल अन्त में शस्त्र को घुमाकर मस्तक के उपर ले जाया जाता है । शरीर की लीलायुक्त हलचलों के साथ इन न्यायों के द्वारा धनुष, वज्र, तलवार आदि शस्त्रों को घुमाया जाता है । रंगमंच पर प्रदर्शित होने वाले युद्धो में भेदन, छेदन और रक्त का बहाना या कोई प्रहार नहीं बतलाया जाता । यहाँ शस्त्रों को सिर्फ नाट्य–संकेतो से जोड़ा जाता है या फिर अभिनय के द्वारा शस्त्रों के प्रहार से क्षतविक्षत किया जाता है । यह व्यायाम अंगो के सौष्ठव तथा अंगहारों से पूर्ण होता है । इसके साथ ताल, लय और संगीत की भी योजना होती है । व्यायाम प्रदर्शन में सदा 'सौष्ठव' का ध्यान रखा जाता है । सृष्टि नहीं की जा सकती । अंगों का सौष्ठव प्रदर्षित करने के लिए शरीर को सीधा रखने की

आवश्यकता होती है । न झुके हुए, यथेच्छ, न उँचे तने और न अधिक झुके हुए रखकर अंगों का सौष्ठव प्रदर्शित करना चाहिए । मध्यम तथा उत्तम पात्रो द्वारा सौष्ठव को ठीक प्रदर्शित करने का उद्योग करना चाहिए क्योंकि नाट्य, नृत्त तथा नृत्य 'सौष्ठव' पर ही आधारित है । चतुरस्त्र में दोनों हाथ कटि तथा नाभि घुमने वाले हो, छाती तनी हो और वैष्णव स्थान हो तो अंगों का यह सारा एक साथ होने वाली स्थिति को 'चतुरस्त्र' कहलाता है ।

धनुष के चार कार्य है ,'परिमार्जन' का अर्थ होता है धनुष्य चलाने की तैयारी करना । जब हम बाण छोडने के लिए धनुष को नीचे की तरफ घुमाते है तो उसे 'परिमार्जन' कहते हैं । बाण को छोडने के लिए धनुष्य को उसकी स्थिति में रखते हैं उसे आदान कहते हैं । धनुष पर बाण को चढाने की प्रक्रिया को 'सन्धान' कहते हैं तथा बाण को छोड़ने की प्रक्रिया को 'मोक्षण' कहा जाता है ।

2.4.15 मंडल :

आकाशिकी मंडल के दस प्रकार है ।

अतिक्रान्ता : दाहिने पैर से 'जनिता' चारी प्रदर्शित करे फिर शकटास्या चारी का जिसमें वक्षःस्थल उद्धाहित होता है। फिर बांए पैर से 'अलात' तथा दाहिने पैर से 'पार्श्वक्रान्ता' चारी का प्रदर्शन किया जाता है। उसके बाद बांए पैर से 'सूची' और भ्रमरी चारी को कमर का घुमाव लेते हुए प्रदर्शित किया जाता है । फिर दाहिने पैर से उद्धाहित चारी तथा बाएं पैर से अलात चारी को प्रदर्शित कर उसे भ्रमरी चारी में परिवर्तित कर दें । फिर उसी बांए पैर से अलातचारी और दाहिने पैर द्वारा दण्डपाद चारी का प्रदर्शन करने पर यह व्यायाम में होने वाला अतिक्रान्त मण्डल हो जाता है ।

विचित्र : दाहिने पैर को कंपाते हुए 'जनिता' चारी का प्रदर्शन करे तथा उसे ही तलसंचर पाद बनाएं । फिर बांए पैर से स्पन्दिता चारी तथा दाहिने पैर से पार्श्वक्रान्ता का बांए पैर द्वारा 'सूचीचारी' तथा दाहिने पैर से अपक्रान्ता चारी का फिर बांए पैर से भुजंगत्रासिता चारी तथा दाहिने पैर से 'अतिक्रान्ता' का फिर दाहिने पैर से उद्वृत्ता चारी का तथा बांए पैर से 'अलातचारी' का फिर दाहिने पैर से पार्श्वक्रान्ता चारी तथा बांए से

सूची का फिर दाहिने पैर से 'विक्षिता' चारी का तथा बाएं से अपक्रान्ता चारी का प्रदर्शन करें तो 'विचित्र' नामक मण्डल कहलाता है ।

ललितसंचर : दाहिना पैर अपनी जंघा को उपर उठाकर 'सूची' का प्रदर्शन करे और बांया पैर 'अपक्रान्ता' का प्रदर्शन करें तथा दाहिने पैर से 'पार्श्वक्रान्ता' का प्रयोग किया जाए और फिर बांया पैर सूची चारी का प्रदर्शन कर भ्रमरी चारी का प्रयोग किया जाए फिर दाहिने पैर से पार्श्वक्रान्ता तथा बांए पैर से अपक्रान्ता चारी को प्रदर्शित कर उसे भ्रमरी चारी में परिवर्तित करें तो 'ललितसंचर' मण्डल बन जाता है । सूचीविद्ध में बांए पैर से सूची का प्रदर्शन करके भ्रमरी चारी का प्रदर्शन किया जाए और फिर दाहिने पैर से सूची चारी का और बांए पैर से अपक्रान्ता चारी का प्रयोग कर दाहिने पैर से भी अपक्रान्ता चारी का प्रदर्शन किया जाए तो उसे 'सूचीबद्ध' मण्डल से जाना जाता है। दण्डपाद में दाहिने पैर से 'जनिताचारी' का प्रदर्शन किया जाता है और दण्डपाद चारी को प्रदर्शित कर फिर बांए पैर से 'सूची' को प्रदर्शित कर भ्रमरी चारी को प्रदर्शित किया जाता है । फिर दाहिने पैर से उद्वृत्ता चारी का बांए पैर से अलाता चारी का प्रदर्शन किया जाए तथा दाहिने पैर से पार्श्वक्रान्ता चारी का प्रदर्शन किया जाए और दाहिने पैर से ही दण्डपाद चारी को तथा बांए पैर से सूची को प्रदर्शित कर त्रिक को घुमाव दे कर भ्रमरी चारी का प्रदर्शन किया जाए तो उसे 'दण्डपाद' मण्डल कहा जाता है ।

विहत : दाहिने पैर द्वारा जनिता चारी का तथा इसी पैर द्वारा तलसंचर पाद अर्थात् निकुटक का, फिर बांए पैर से स्पन्दिता तथा दाहिने पैर से उद्वृत्ता चारी का प्रयोग किया जाए और फिर बांए पैर से अलातः चारी का और दाहिने पैर से आक्षिप्ता का प्रदर्शन करके भ्रमरी चारी प्रदर्शित करने के बाद एक घुमाव लेकर या त्रिक को परिवर्तित कर दण्डपाद चारी का प्रदर्शन किया जाए और फिर बांए पैर से सूची और भ्रमरी चारी का प्रदर्शन किया जाए फिर उसके बाद दाहिने पैर से भुजंगत्रासिता चारी तथा बांए पैर से अतिक्रान्ता चारी का प्रदर्शन करने से 'विहत' मण्डल बनता है । अलात : दाहिने पैर से 'सूच' चारी का प्रयोग कर तथा बांए पैर से अपक्रान्ता चारी का फिर दाहिने पैर से पार्श्वक्रान्ता चारी और बाएं पैर से अलाता का फिर इन्हीं चारियों से क्रमषः ललितपाद विन्यासो द्वारा छः या सात बार घुमाव लिया जाता है । उसके बाद दाहिने

पैर से 'अपक्रान्ता' चारी तथा बांए पैर से अतिक्रान्ता चारी को प्रदर्शित करके 'भ्रमरी' का प्रदर्शन किया जाए तो उसे अलात मण्डल कहा जाता है ।

वाम–विद्ध : दाहिने पैर से सूची चारी का तथा बांए पैर से अपक्रान्ता चारी का फिर दाहिने पैर से दण्डपादा चारी का प्रयोग किया जाए तथा बांए पैर से 'सूची' का प्रयोग करके दाहिने पैर से भ्रमरी चारी को प्रदर्षित कर पार्श्वक्रान्ता चारी का तथा दाहिने पैर से दण्डपादा चारी का फिर दाहिने पैर से उरूद्वृत्ता चारी तथा बांए पैर से सूची को प्रदर्शित कर भ्रमरी चारी को प्रदर्शित किया जाता है । फिर बांए पैर से 'अलाता' चारी का तथा दाहिने पैर से पार्ष्वक्रान्ता चारी का तथा बाएं पैर अतिक्रान्ता चारी का प्रदर्शन किया जाए तो उसे 'वामाविद्ध' मण्डल कहलाता है ।

ललित : यदि दाहिने पैर से सूची चारी का तथा बांए पैर से अपक्रान्ता चारी का प्रदर्षन किया जाए उसके बाद दाहिने पैर से पार्ष्वक्रान्ता तथा भुजंगत्रासिता चारी का प्रयोग किया जाए फिर बांए से अतिक्रान्ता तथा दाहिने पैर से अक्षिप्ता का प्रदर्षन किया जाता है । उसके बाद बांए पैर से अतिक्रान्ता तथा उरूद्वृत्ता चारी को प्रदर्शित कर फिर बांए से अलात तथा दाहिने पैर से अपक्रान्ता चारी का ललितगति से प्रदर्शन करने से 'ललित' मण्डल कहलाता है ।

क्रान्त : दाहिने पैर से सूची तथा बांए पैर से अपक्रान्ता चारी का फिर दाहिने पैर से पार्ष्वक्रान्ता चारी का प्रदर्शन किया जाए तथा बांए पैर से ही पार्ष्वक्रान्ता चारी को प्रस्तुत किया जाए तथा बांए पैर से ही पार्ष्वक्रान्ता चारी को प्रस्तुत करने के बाद फिर से इन्हीं सभी चारीयों के प्रयोग से एक के बाद एक सभी दिशाओं में घुमाव लिया जाए और फिर बांए पैर से 'सूची' का और दाहिने पैर से अपक्रान्ता चारी का प्रदर्शन करें तो इस मण्डल को 'क्रान्त' मण्डल जाना जाता है । इसकी योजना स्वाभाविक गति में ही करनी चाहिए क्योंकि इसकी प्रतिति यौगिक अर्थ के द्वारा होती है ।

भौमिकमण्डल मंडल के दस प्रकार है ।

भ्रमर : दाहिने पैर से 'जनिता' चारी तथा बांए पैर से 'आस्वकन्दिता' चारी का प्रयोग किया जाए और उसके बाद दाहिने पैर से शकटास्या चारी को प्रदर्शित कर बांए पैर को फैला देने के बाद दाहिने पैर से भ्रमरी चारी का शरीर को घुमाव देकर प्रदर्शित किया जाता है । फिर बांए पैर से 'आस्कन्दिता' चारी का तथा दाहिने पैर से 'षकटास्या' चारी का प्रयोग किया जाए । फिर उसके बाद पैर से अपक्रान्ता चारी अपसर्पो का और त्रिक को घुमाव देते हुए भ्रमरी चारी का प्रदर्षन करे तो उस स्थिति को 'भ्रमर' मण्डल कहा जाता है ।

आस्पन्दित : इस स्थिति में दाहिने पैर से 'भ्रमरी' चारी का तथा बाएं पैर से 'अहिता' चारी का तथा पीठ को एक घुमाव देकर भ्रमरी चारी का फिर उसके बाद दाहिने पैर से 'शकटास्या' चारी का प्रयोग किया जाता है । उसके बाद फिर से 'उरूद्वृत्ता' चारी का फिर बांए पैर से अतिक्रान्ता चारी अर्थात् अपसर्पी को प्रदर्शित करे और फिर भ्रमरी को प्रदर्शित किया जाता है । फिर दाहिने पैर से स्पन्दिता चारी का और पुनः बाएं पैर से 'षकटास्य' चारी का प्रदर्शन करके उसे भूमि पर जोर का झटका दिया जाता है । इस क्रिया से आस्पन्दित नाम का युद्ध में प्रयुक्त करने वाला मण्डल बन जाता है ।

आवर्त्त : दाहिने पैर से जनिता चारी तथा बाएं पैर से तलसंचर का फिर दाहिने पैर से शकटास्या तथा उसीसे उरूद्वृत्ता का प्रयोग किया जाए उसके बाद पीठ को घुमाते हुए बांए पैर से अतिक्रान्ता चारी का तथा 'चाषगति' चारी का प्रयोग किया जाता है और दाहिने पैर से 'स्कन्दिता' चारी का तथा बाएं पैर से शकटास्या चारी का प्रयोग किया जाए उसके बाद दाहिने पैर से पीठ को चक्कर या घुमाव देते हुए भ्रमरी चारी तथा बांए पैर से अपक्रान्ता चारी को प्रदर्शित करे तो 'आवर्त्त' मण्डल कहा जाता है ।

समोत्सारित : इस स्थिति में समपादम स्थान का प्रदर्शन कर दोनों हाथों को फैलाकर उनकी हथेली उपर की और मुंह वाली रखें । पुनः हाथों को आवेष्टन अर्थात् हाथों को पारस्परिक लपेटे तथा उद्वेष्ठन गति युक्त कर लें, उसके बाद बांए हाथ को कटि प्रदेश पर रखें और दाहिने हाथ को 'आवर्तित' गति से रखा जाता है । फिर दाहिने हाथ को कटि पर रखा जाता है और बांए हाथ को घुमाते हुए तथा आवर्तित चारी में स्थित रहने पर 'समोत्सारित' मण्डल कहलाता है ।

एलकाक्रीडिता : दोनों सम पैरों को पृथ्वी पर टिकाकर फिर 'सूची' तथा एलकाक्रीडिल चारी को प्रदर्शित करें फिर शीघ्र भ्रमरी चारी का प्रदर्शन करके त्रिक को घुमाव दें फिर 'सूची' तथा आविद्धा चारी को गोल घुमाव देकर प्रदर्शन करें तो उसे खण्डमण्डल नाम वाला एलकाक्रीडिता मण्डल कहा जाता है ।

अड्डितः दाहिने पैर को 'उद्घाट्ति' लक्षण के अनुसार घुमाने के बाद एक सामान्य गोल घुमाव लें और फिर उसी पैर को 'आस्पन्दिता' चारी के अनुसार घुमाया जाए तथा बांए पैर से शकटास्या चारी का प्रयोग किया जाए उसके बाद दाहिने पैर को पीछे की और अपक्रान्ता चारी के अनुसार तथा चाषगति चारी के अनुसार ले जाया जाता हे और फिर बांया पैर अड्डिता चारी में तथा दाहिना पैर 'अपक्रान्ता' चारी में रखा जाता है । उसके बाद बांए पैर से 'भ्रमरी' और दाहिने पैर से स्पन्दिता चारी का प्रदर्शन कर पृथ्वी पर पैरों को जोर से पटका जाए तो 'अड्डित' मण्डल बन जाता है ।

शकटास्य : दाहिने पैर द्वारा 'जनिता' चारी को और फिर इसे तलसंचरपाद लक्षण में गतिशील रखा जाता है । उसके बाद पैर से 'शकटास्य' चारी तथा बांए पैर से स्पन्दिता चारी का प्रदर्षन किया जाता है । फिर शकटास्या चारी में दोनों पैरों के द्वारा क्रमशः गोल घुमाव ले तो 'शकटास्य' मण्डल होता है । इस मण्डल का प्रयोग युद्ध प्रदर्शन में किया जाता हैं ।

अध्यर्ध : इस प्रयोग में दाहिने पैर द्वारा 'जनिता' चारी तथा पुनः उसी से आस्कन्दिता चारी का प्रदर्शन किया जाता है । फिर उसके बाद बांया पैर अपक्रान्ता चारी का तथा दाहिना पैर शकटास्या चारी का प्रयोग किया जाता है । इस प्रकार इन चारियों में एक के बाद एक घुमाते हुए मण्डल बनाया जाता है । इस 'अध्यर्ध' मण्डल कहा जाता है । इसका प्रयोग बाहुयुद्ध में किया जाता है ।

पिष्टकुट्ट : दाहिने पैर से 'सूची' चारी का और बांए पैर से अपक्रान्ता चारी का प्रदर्शन किया जाता है । इसके बाद दाहिने पैर से भुजंगत्रासिता चारी का तथा बांए पैर से भी इसी चारी का प्रदर्शन कर फिर दोनों भुजंगत्रासिता चारी वाले पैर वर्तुलाकार गति में घ ूमते हुए रखा जाए तो इस चारी मण्डल को 'पिष्टकुट्ट' मण्डल कहा जाता है । इसका प्रयोग युद्ध प्रदर्शन में किया जाता है ।

चाषगत : चाषगत चारी के पादों से गोल घुमाव लेकर मण्डल बनाए तो इसे चाषगत नामक मण्डल कहा जाता है । बाहुयुद्ध में इसकी योजना की जाती है । जिसमें समचारीयों का निरंतर प्रयोग हो उसे समचारी मण्डल कहा जाता है ।

इस अध्याय में भरतमुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र जिसमें नाट्यकला के बारे में तथा अन्य कलाओं को 36 अध्यायों में विशेष विवरण किया गया है । उसे बताने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है । जिसमें प्रथम अध्याय से लेकर 36 छत्तीसवें अध्याय के बारे में बताने का प्रयास किया गया है तथा नाट्यशास्त्र में आंगिक अभिनय के अंतर्गत आने वाले अंग और उपांगो की चर्चा करने का प्रयास किया है, जिसमें शिरोभेद, अंगहार तथा एकसौ आठ करणों के बारे में बताने का प्रयास किया है । साथ ही साथ नाट्यशास्त्र के रचयता भरतमुनि का परिचय तथा उनके विषय में जानकारी देने का प्रयास भी किया है । इस अध्याय से नाट्यशास्त्र में दिए गए आंगिक अभिनय तथा भरतमुनि के जीवन के बारे में बताने की कोशिश की गई है जिससे भविष्य में कई विद्यार्थीओं को समझने में सहायता हो सकेगी